पाप का बाप कौन ?

एवं

अन्य कथाएँ

[१०८ प्रेरणात्मक रोचक लघु-कथाएँ]

लेखक :

दीनदयाल भार्गव, एम. एस-सी.,

(भूतपूर्व उप-मुख्य नियन्त्रक, आयात-निर्यात, भारत सरकार
तथा वर्तमान मंत्री, नेत्रहीन सेवा संघ, अजमेर)



मूल्य : तीन रुपये

प्रकाशक :
दीनदयाल भार्गव
आदर्श नगर
अजमेर



मुख्य वितरक :
सर्वोदय साहित्य भण्डार
महात्मा गांधी मार्ग (कचहरी रोड)
अजमेर (राजस्थान)



प्रथम संस्करण १९७१ ई०
द्वितीय संस्करण १९८४ ई०



मुद्रक :
वीणा भार्गव



सह-धर्मिणी प्रेमलता को सप्रेम

दो शब्द

जीवन जीने के लिए है, पर जीना कैसे—इस प्रश्न पर [illegible] आरम्भ से लेकर अब तक विचार किया जाता रहा है। [illegible] श्रेयस् और प्रेयस् दोनों मार्ग नाना प्रकार-भेद लिए आते हैं। [illegible] भी मार्ग को अपनाएँ, मुख्य बात है चित्त-शुद्धि का मार्ग, [illegible] स्पष्ट होना। इस हेतु जीवन-कला को सुबोध तथा सरल [illegible] लिए नाना रूपों में व्यक्त करने की चेष्टा हमारे देश [illegible] हुई है। पंचतंत्रादि ऐसे ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ-रत्न हैं। [illegible] जगत की नाना लीलाओं की लघु छवियों में [illegible] कला की रश्मियाँ प्रत्येक को, विशेषतः बाल-किशोर [illegible] कर प्रभावित करती हैं। जीवन का [illegible] लक्ष्य की सिद्धि के लिए ये लघु-कथाएँ बड़ी उपयोगी हैं।

अन्ध छात्रो को नि:शुल्क पढाने के अलावा ये श्री रामकृष्ण आश्रम के अवैतनिक मन्त्री भी हैं।

मनुष्य जीवन, मुख्यत बाल जीवन को, सुसस्कृत, सदाचारी एव प्रभावशाली बनाने मे कथा-वार्त्ताओ का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। भार्गव साहब ने रोचक दृष्टान्तो को पुस्तक-रूप मे प्रकाशित करके निस्सदेह एक उत्तम कार्य किया है। प्रत्येक कथा मे उससे मिलने वाली शिक्षा का उल्लेख भी लेखक ने किया है। उनकी अभिव्यक्ति भी प्रसादमयी है।

मुझे विश्वास है कि इस पुस्तक का जनता मे स्वागत होगा और पाठक इससे पूर्ण लाभ लेंगे। मेरा शुभाशीर्वाद।

अजमेर,
अक्षय तृतीया
२७-४-७१

स्वामी त्रिदिवेशानन्द
अध्यक्ष
श्री रामकृष्ण आश्रम, अजमेर

प्रस्तावना

कथा कहानियो का हमारे चरित्र पर गहरा प्रभाव पड़ता [illegible] हमारे शास्त्र कथाओ से भरपूर है। रामायण, महाभारत, पुराण [illegible] की कथाएँ हमे बालपन से ही माता-पिता अथवा शिक्षकों द्वारा सुनने मिलती है। बालक का मन बाल्यावस्था मे निर्दोष, शुद्ध [illegible] सस्कारग्राही होने से इस काल मे वह जो कुछ सुनता है उससे [illegible] उत्तम सस्कार बनते है और आगे चलकर उत्तम सस्कार [illegible] चरित्र का निर्माण करते हैं। बच्चा श्रद्धा और विश्वास से पूर्ण [illegible] है। वह कहानी सुनते समय ऐसे प्रश्न नही करता कि क्या [illegible] पत्थर भी कही बोलते है? उसको तो उनका बोलना बिल्कुल स्वाभाविक मालूम देता है। बडे होने पर इन कथाओ का सार-भाग [illegible] पर रह जाता है और जो बात सम्भव नही दीखती है उसे [illegible] है। जिस घर मे बच्चो को कथा कहानी सुनने को नही [illegible] उनके संस्कार निश्चय ही दुर्बल रहते है और चरित्र-निर्माण की [illegible] का उनमे प्राय अभाव होता है। मुझे निश्चय भी [illegible] हमारा अत्यन्त प्राचीन-काल से चला आया भारतीय धर्म [illegible] जीवित है तो उसका एक प्रमुख कारण है हमारे धर्मशास्त्रो मे [illegible] असंख्य अत्यन्त रोचक एवं शिक्षा से पूर्ण कथाएँ।

उनकी अनुपस्थिति मे अन्य विद्वान् महात्मा धार्मिक विषयो पर प्रवचन करते हैं। ऐसे ही महात्माओ के प्रवचनो मे जो कथाएँ अच्छी लगी उनका व अन्य का लेखन इस पुस्तक मे प्रस्तुत कर रहा हूँ। धर्म मे मुख्य बात शुद्धाचरण की है और इस धर्म-प्रधान देश भारत मे ही दुर्भाग्य से सदाचार का स्तर कुछ वर्षो से आश्चर्यजनक रूप मे गिरता चला जा रहा है। ऐसे समय मे इस प्रकार की पुस्तको के पठन, मनन व अन्ततोगत्वा आचरण की नितान्त आवश्यकता है।

पूज्य स्वामी त्रिदिवेशानन्दजी, अध्यक्ष, श्री रामकृष्ण आश्रम, अजमेर का मै अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिनके सान्निध्य मे रहकर सत्सगति-लाभ तथा ईश्वर-चर्चा सुनने का प्रतिदिन सौभाग्य मिलता रहता है और जिन्होने कृपा करके प्रस्तुत पुस्तक के सम्बन्ध मे "दो शब्द" लिखने का कष्ट किया है।

मै श्री विष्णु अम्बालाल जोशी, भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गवर्नमेण्ट कॉलेज, अजमेर का भी आभारी हूँ, जिन्होने पुस्तक की पाण्डु-लिपि को आद्योपान्त पढा व पुस्तक-प्रकाशन मे अनेक उपयोगी सुझाव देकर मेरा पथ-प्रदर्शन किया।

मुझे आशा है कि इस सग्रह को बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी उपयोगी पायेंगे एव सन्मार्ग पर चलने की कुछ न कुछ प्रेरणा अवश्य प्राप्त करेंगे।

भगवान भारत का भविष्य उज्ज्वल करें।

आदर्शनगर
अजमेर
श्री रामनवमी
दिनाक ४-४-१९७१

दीनदयाल भार्गव

द्वितीय संस्करण

प्रसन्नता की बात है कि पुस्तक "[illegible]" का प्रथम संस्करण तीन वर्ष से भी कम समय में समाप्त हो गया और अब जनता के हाथों में यह द्वितीय संस्करण पहुंच रहा है।

इस संस्करण में पुस्तक के नाम में किंचित परिवर्तन किया गया है अर्थात् पुस्तक के शीर्षक में अब "कौन" शब्द जोड़ दिया गया है। कथाओं की संख्या भी बढ़ाकर बावन से एक सौ आठ कर दी गई है। आशा है, पाठकों को यह नयी सामग्री भी पहले के ही समान रोचक लगेगी।

आदर्श नगर, अजमेर
बुद्ध-पूर्णिमा
दिनांक [illegible]-५-७४

[illegible]

क्रम सं.	अनुक्रमणिका	पृष्ठ

प्रिय है। युधिष्ठिर का अन्त:करण शुद्ध होने से उन्हें बुराई नजर नहीं आई और दुर्योधन का मन मलिन होने से उन्हें कोई अच्छाई नजर नहीं आई।

२—प्रेम और संतोष की महिमा

सदा की भांति भगवन्नाम गुणगान में तल्लीन नारद ऋषि एक वन में से होकर जा रहे थे कि देखा एक साधु एक विशाल वृक्ष के नीचे बैठे तपस्या कर रहे हैं। नारदजी को देख साधु ने उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया और बोले, "महाराज आपकी पहुँच तो सभी लोकों तक है, आप विष्णु लोक जायें तो कृपया भगवान से पूछें कि इस दास को वे कब दर्शन देंगे।"

आगे जाने पर एक दूसरे महात्मा मिले। उन्होंने भी नारदजी से इसी प्रकार की प्रार्थना की।

भगवान से आप क्या खबर लाये है ?" नारदजी बोले, "भगवान ने कहा है कि जिस पेड के नीचे तुम तपस्या कर रहे हो उसके जितने पत्ते है उतने ही जन्म के पश्चात् तुम्हे भगवान के दर्शन होगे ।" नारदजी ने बहुत दु:ख और सकोच के साथ यह भगवान का सदेश महात्मा को सुनाया था, सोच रहे थे महात्मा को बड़ी निराशा होगी । परन्तु उधर हाल दूसरा ही हुआ । वे महात्मा तो हर्ष से उछल कर नाचने लगे, उनकी प्रसन्नता का पार ही नही था । उनकी दशा ऐसे लोभी की सी थी जिसको यकायक ही अपार धनराशि मिल जाये । एक दिन प्रभु दर्शन देगे यह कितनी बडी बात है और यह भी प्रभु ने अपने मुख से कहा है, असत्य तो हो ही नही सकता । दयालु प्रभु मुझ जैसे सकल अवगुणो की खान को दर्शन देगे, इस बात का बारम्बार स्मरण करके उन्हे रोमाञ्च हो आया । उनकी दशा पागलों की सी हो गई । भक्त की ऐसी दशा देखकर भगवान अपने को अधिक देर नही रोक सके, वे तत्काल प्रकट हो गये । महात्मा का जन्म सफल हो गया । आज उनसे बडा भाग्यवान कौन था !

यह सब कुछ देखकर नारदजी से न रहा गया और उन्होने भगवान को उलाहना दिया, "वाह यह खूब रही, आपने तो मुझे झूठा ही बना दिया । आपने इतने लम्बे समय के बाद दर्शन देने को कहा था और आपने तत्काल ही दर्शन दे दिया ।" भगवान बोले, "नारद, जो कुछ मैने कहा था वह सत्य था । परन्तु क्या करूँ, मै भक्त के प्रेम के वश मे हूँ । उस भक्त के सतोष और धैर्य ने मुझे तत्काल दर्शन देने को बाध्य कर दिया । मै अधिक एक क्षण भी रुकने मे असमर्थ था ।"

सच है, तीव्र प्रेम और धीरज से क्या कुछ प्राप्त नही हो सकता ।

३—भक्त का लक्षण—सांसारिक वस्तु से वैराग्य

भक्त रामदास अपने को ऊची कोटि का भक्त मानने लगे थे। इनसे उन्हे थोडा अहकार हो गया था। एक दिन मन्दिर मे से आवाज सुनाई पड़ी कि तुम से भी बड़े भक्त है, रका वका नाम के दम्पत्ति। खोजने पर मालूम हुआ कि वे साधारण किसान है। एक दिन रका वका कहीं से आ रहे थे। वका पीछे थी और रंका उसके आगे। सहसा रास्ते मे रंका को कोई चीज पडी हुई नजर आई। वह रुका, वका ने आगे पहुँचकर रंका के रुकने का कारण पूछा। रंका ने कहा, "यह रास्ते मे सोने का टुकड़ा पड़ा था, उस पर मिट्टी डाल रहा था कि कहीं तुम उसे देखकर लालच मे न पड जाओ।" वका फौरन ही बोली "वाह नाथ! तुम तो अभी तक भेद कर रहे थे, मिट्टी से मिट्टी को ही ढक रहे थे।" यह सब रामदास देख रहे थे और उनमे अब कुछ-कुछ समझ मे आया।

राम कृष्ण परमहंस अपनी साधना काल मे एक मुट्ठी मे सोना और एक मुट्ठी मे मिट्टी लेकर कहते "मिट्टी सोना, सोना मिट्टी," ऐसा बार बार कह कर फिर दोनों [illegible] मे फेंक देते। मन का सांसारिक दृष्टि से कुछ भी [illegible] मार्ग पर ले जाते, [illegible] उनका कुछ नहीं [illegible] है।

४—श्याम राम का, काम हराम का

"हे राम! तेरे सिवा [illegible]!" एक बूढ़ा सुनार अपनी दुकान पर बैठा धुन मे [illegible] कहता रहता था।

लोग सोचते थे, अवश्य ही वृद्ध पाप कर्म से दूर रहने वाला धर्मपरायण भगवान का भक्त है। इस कारण ग्राहक भी इस दुकान पर दूसरी दुकानो की अपेक्षा अधिक सख्या मे खिच आते थे। एक दिन उसी सुनार की लडकी उसकी दुकान पर गहना बनवाने आई। उसे पूरा भरोसा था कि कम से कम यहा घर की दुकान पर तो उसके साथ कोई धोखा नही होगा। वृद्ध का लडका गहना बनाने लगा और लडकी वही बैठ गई। वृद्ध सोच मे पड गया कि लडका बहिन समझ कर उसके सोने मे से कुछ भी न निकालने की नादानी न कर बैठे। अब तो वृद्ध ने इशारे से समझाने के लिये और जल्दी-जल्दी रट लगायी "हे राम, तेरे लिये सब समान। हे राम, तेरे लिए सब समान।" क्या करता लडकी की उपस्थिति मे वह स्पष्ट तो कह नही सकता था। अत इस मन्त्र को बार-बार बोलकर लडके को वह इशारा करना चाहता था कि मनुष्य को अपने पराये म भेद नही करना चाहिए। परन्तु लड़का नादान कहाँ ? वह तो चतुर पिता का चतुर पुत्र था। उसने तो सोने मे से अपना हक पहले ही निकाल लिया था। परन्तु वह पिता को समझाये किस प्रकार ? उधर वृद्ध की रट जारी थी। आखिर लडके ने युक्ति निकाली, वह बोला, "पिताजी ! हनुमान ने लका जला डाली और राम को पता भी नही चला।" इस प्रकार दो एक बार जब लड़के ने कहा, तब पिताजी समझ गये कि लड़का मूर्ख नहीं है।

पाप कर्म यो ही बुरा फल देता है। उनको करने मे ईश्वर नाम का सहारा और ले ले, तो उसका फल कितना बुरा हो सकता है, यह कोई भी भली भाति समझ सकता है। आज-

कल के समय में जिधर देखो उधर यही होता है। ऊपर से सुवेष वनाकर अथवा तिलक लगाकर भोले-भाले लोगो को ठगने में हमें जरा हिचकिचाहट नही होती।

५—मन-शुद्धि की आवश्यकता

दो चीटी थी। एक नमक के पहाड़ पर रहती थी, दूसरी चीनी के पहाड पर। एक दिन पहली चीटी दूसरी चीटी के पास आई और वोली, "वहिन, तुम जो सदा चीनी खाती रहती हो क्या उसका स्वाद मुझे भी चखा सकती हो?" दूसरी चीटी वोली, "वहिन यहां तो सव चीनी ही चीनी है, चीनी को छोड़कर दूसरी वस्तु ही नही है, जहा से और जितनी चाहो खाओ।" नमक पर रहने वाली चीटी चीनी के पहाड़ पर वहुत घूम फिर आई, परन्तु उसे कही चीनी का स्वाद नही मिला। अन्त में थक कर चीनी पर रहने वाली चीटी से वोली, "वहिन, मुझे तो कही कुछ भी स्वाद नही आया, तुम कैसे कहती हो कि सव जगह चीनी ही चीनी है।" दूसरी चीटी को यह सुनकर वहुत आश्चर्य हुआ, परन्तु कुछ कारण समझ मे नही आया। आखिर वहुत सोच कर वोली, "वहिन, जरा अपना मुख तो खोलो।" जव उसने मुख खोला तो दूसरी चीटी ने देखा कि उसके मुख मे तो पहले ही से एक नमक की डली रखी हुई है। तव वह वोली, "वहिन अव मुझे कारण समझ मे आया कि क्यों तुम्हे चीनी का स्वाद नही आता है। तुम अपने मुँह मे नमक की डली को निकाल दो और फिर चीनी खाओ।" पहली चीटी ने वैसा ही किया, अव उसे चीनी का स्वाद आने लगा और वह खुश हो गई।

जब तक मन मे दुर्गुण घर करे बैठे है तब तक उसमे सद्-गुण आकर नही बस सकते, उनके बस सकने के लिये स्थान ही कहां है। जहां राम है वहा काम नही, और जहा काम वहा राम नही। दुर्गुण अनेक है, परन्तु इन्हे यदि हम संक्षेप मे कहे तो वे है काम, अर्थात् इन्द्रिय सुख-भोग की इच्छा, क्रोध, लोभ, मद अर्थात् घमण्ड, मोह अर्थात् मेरापन का भाव, जबकि सब कुछ ईश्वर का है मेरा कुछ नही. मात्सर्य अर्थात् ईर्षा, अपने से अधिक किसी को सुखी देखकर कुढना। सद्गुण आकर घर करे इससे पूर्व इन दुर्गुणो की सेना को मार भगाना होगा।

६—ईश्वर सब अच्छे के लिये ही करता है

एक दिन की बात है कि एक व्यक्ति राजा के पास एक बढिया तलवार भेंट करने आया। राजा म्यान मे से उसे निकाल कर देखने लगे। देखते-देखते यकायक तलवार हाथ से छूट कर पैर के अंगूठे पर जा गिरी। अंगूठा कट गया। मंत्री भी वहीं बैठे थे, सदा की भांति जैसी उनकी आदत थी इस बार भी बोले, "ईश्वर जो करता है वह अच्छे के लिये ही करता है।" राजा चिकनी-चुपड़ी बातें सुनने का आदि था। मंत्री की ऐसे समय यह बात सुनते ही उसे क्रोध आ गया। क्रोध मे मनुष्य की विचार-शक्ति मन्द हो जाती है, वह विवेक खो बैठता है। क्रोध मे राजा ने मंत्री को बरखास्त कर दिया। मंत्री बिना विरोध किये चुपचाप उठकर अपने घर चल दिया। घटना के कुछ दिन पश्चात् जब अंगूठा कुछ ठीक हुआ, राजा एक दिन शिकार को निकला। शिकार के पीछे घोड़ा दौड़ाते-दौड़ाते राजा अपने साथियो से बिछुड कर बहुत दूर निकल गया और उधर उसे

डाकुओं ने घेर लिया। डाकू लोग देवी की वलि चढाने के लिये एक पुरुष की तलाश मे थे। राजा की आकृति और वेप से वे खुश हो गये और उसे वलि चढ़ाने योग्य समझकर देवी के मन्दिर में ले गये। परन्तु ज्योही एक डाकू राजाकी गर्दन पर वार करने वाला था कि एक दूसरे डाकू की दृष्टि राजा के पैर के अगूठे पर गई और उसने देखा कि अंगूठा कटा है। अंगहीन मनुष्य वलि के योग्य नही समझा जाता। अतः डाकुओ ने विवश होकर राजा को मुक्त कर दिया। राजा अपनी नगरी लौट आया। अव तो राजा को कुछ समझ में आया। उसने अपने पुराने मन्त्री को वुलाया और क्षमा मागते हुए कहा, "आपने उस दिन सत्य ही कहा था कि ईश्वर जो कुछ करता है वह अच्छे के लिये ही करता है। यदि उस दिन मेरा अगूठा तलवार के वार से न कट गया होता तो अवश्य ही डाकू मेरी वलि चढ़ाये विना नही मानते।"

राजा के मन मे अभी भी एक शंका वाकी रह गई थी। वह मन्त्री से वोला, "जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, ईश्वर ने जो किया वह अच्छा ही किया, परन्तु यह वताइये कि आपका मेरे द्वारा पदच्युत किया जाना आपके लिये किस प्रकार अच्छा रहा ?" मन्त्री वोला, "यह वात तो विल्कुल स्पष्ट है। आप जव भी शिकार को जाते है मुझे साथ ले जाते है। उस दिन भी आप अवश्य मुझे साथ ले जाते। जव डाकू आपको खण्डित अग वाला देखकर छोड़ देते, तव वे निस्सन्देह मेरे अगों मे कोई दोष न देख मुझे ही वलि चढ़ाते और इस प्रकार मुझे प्राणों से हाथ धोना पडता।" राजा को वात समझ मे आ गई और उसने मन्त्री की वुद्धिमानी की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

ईश्वर की अनन्य भक्ति के विना उसकी लीला के रहस्य को समझना बहुत कठिन है।

७—पूर्ण शरण विना भगवान सहायक नहीं होते

लक्ष्मी और नारायण दोनो अपने-अपने आसन पर बैठे थे कि यकायक नारायण उठकर चलने लगे। परन्तु कुछ ही दूर चलकर अपने स्थान पर लौट आये और पुन आसन पर बैठ गये। लक्ष्मीजी को बडा कौतुहल हुआ और वे श्रीनारायण से इसका कारण पूछे विना न रह सकी। नारायण ने बताया कि मेरे एक भक्त को अभी-अभी किसी ने धक्का देकर नीचे गिरा दिया था और वह उसे पीट रहा था। मुझसे रहा न गया और मैं उसकी सहायता पर जा ही रहा था कि यकायक देखता हूँ कि भक्त स्वय ही उठकर दूसरे मनुष्य को पीटने लग गया है।

जब हमे अपने बल का गर्व नही रहता और हरि को सहायता के लिये पुकार करते है तभी वह हमारी सहायता करता है। गज और ग्राह इसका प्रसिद्ध उदाहरण है।

८—जो राजा दे नही सकता

एक महात्मा की बहुत ख्याति सुनकर वहा के राजा उनके दर्शन के लिये गये। एक बार के जाने से राजा की महात्मा मे श्रद्धा उत्पन्न हुई और उनके पास दर्शन व उपदेश के लिये बारम्बार जाने लगे। राजा मन ही मन बहुत चाहते थे कि महात्मा उनसे कुछ अपने लिये स्वीकार करे। पर महात्मा तो किसी से कुछ लेते न थे। फिर भी राजा ने उनसे आग्रह किया

कि वे कुछ न कुछ तो अवश्य लें। महात्मा के वारम्वार इनकार करने पर भी जव राजा का आग्रह नही रुका, तो महात्मा ने कहा, "अच्छा, तुम दे सकते हो तो मेरे लिये इन चार चीजो का प्रवन्ध करो। (१) ऐसा जीना जिसमे मरण न हो, (२) ऐसा सुख जिसमें दुःख न हो (३) ऐसी उन्नति जिसमे अवनति न हो, और (४) ऐसी जवानी जिसके साथ वुढापा न हो।

वेचारा राजा ये सव चीजे कहाँ से दे सकता था।

हम लेने देने के मामले में सासारिक वस्तुओं को ही महत्व देते है, परन्तु लोक-परलोक सुधारने वाली असली वाते तो हमारे गुण है। हमारे अवगुण दूर हो और नये-नये गुण हमारे अन्दर प्रकट हों ऐसी हम सवको चेष्टा करनी चाहिए। वही हमारी असली सम्पत्ति है।

९—*रणजीतसिंह की उदारता*

महाराजा रणजीतसिह केवल अच्छे शासक ही नही अपितु वहुत सरल स्वभाव के भी थे। एक वार सभा मे वैठे थे कि कही से आकर एक पत्थर उन्हे लगा। पता लगाने से मालूम हुआ कि पत्थर एक वालक द्वारा फेंका गया था। वालक ने पत्थर वेल के वृक्ष पर फल को लक्ष्य करके फेंका था, परन्तु वह फल के न लगकर महाराजा रणजीतसिंह के जाकर लग गया। महाराजा ने हुक्म दिया कि वालक को उनके सामने वुलाया जाय। वहाँ सभी एकत्रित लोगो को आशका हुई कि अवश्य ही महाराजा रुष्ट हुए है और आज वालक को कड़ा दण्ड मिलेगा। परन्तु यह क्या? आश्चर्य कि महाराजा ने

तो हाथ मे उतार कर अपने सोने का बाजूबन्द लडके को भेंट कर दिया। भयभीत बालक के चेहरे पर खुशी की लहर दौड गयी। उधर सभासद हैरान हो गये। बोले, "महाराज, आपने यह क्या किया, यह बालक तो दण्डनीय था।" महाराजा ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "बालक का फेका पत्थर यदि वृक्ष के लगता तो उसे फल मिलता, क्या रणजीतसिह के लगने से उसे कुछ भी फल न मिलना चाहिए ?"

"महाराजा ऐसे ही स्वभाव के कारण इतने लोकप्रिय थे।

जो ऊंचे पद पर प्रतिष्ठित होकर भी जरा मान-गुमान नही करता सचमुच ऐसे ही व्यक्ति को वास्तविक यश मिलता है। आज रणजीतसिह के उदार स्वभाव को सभी याद करते है।

१०—*असली विद्या वह जो पार लगा दे*

एक एम० ए० पास विद्वान को अपनी विद्या पर बडा गर्व था। एक बार वे एक किश्ती मे सवार हुए। नाव चलने पर वे मल्लाह से बातचीत करने लगे। उन्होंने पूछा, "भाई मल्लाह, यह तो बताओ कि तुम पढे-लिखे कहाँ तक हो ?" मल्लाह बोला, "श्रीमान् हम गरीब आदमी बडी कठिनाई से गृहस्थी का पेट-पालन करते है। यदि हम पढने जाने लगे तो गृहस्थी का पार कैसे पडे ? हमे तो बचपन से ही इस धन्धे में लग जाना पड़ता है।" वे सज्जन बोले, "अरे रे ! तुम पढ़े-लिखे नही, तब तो तुम्हारा जीवन रुपये मे चार आना बरबाद हुआ। अच्छा तो तुमने कोई हुनर तो अवश्य सीखा होगा।" मल्लाह बोला, "नही बाबूजी, यह नाव चलाने के सिवा हम और कोई हुनर नही जानते।"

"अरे, बडे अफसोस की बात है, तब तो तुम्हारा जीवन और चार आने बरबाद गया।"

"अच्छा तो तुमने विवाह तो कर लिया होगा।" "नही बाबूजी, अभी विवाह नही हुआ।" मल्लाह बोला। "तब तो तुम्हारा जीवन और चार आने बरबाद समझो।" थोडी देर मे दरिया मे जोर का तूफान उठा और वह छोटी-सी नाव डगमगाने लगी। उसमें बैठे लोग घबरा गये। मल्लाह ने नाव को बहुत संभाला, परन्तु तूफान का वेग जोर का था और नाव के बचने की कोई आशा नही रही। मल्लाह बोला. "बाबूजी, आपको तैरना आता है?" "तैरना तो नही आता," बाबूजी बोले। "तब तो आपका जीवन रुपये में सोलह आना बेकार गया है।" यह कह कर वह मल्लाह नाव को छोड़ कर दरिया मे कूद पडा और पार लग गया। उधर वह नाव उलट गयी।

सच्ची विद्या वह है जो मनुष्य को भव-सागर के पार लगा दे।

११—*असली मूल्य किसका?*

एक पडितजी को तीर्थ-यात्रा की इच्छा हुई। पैसे का अभाव था अत: उन्होने अपने पास की गणेश तथा उसके वाहन चूहे की सोने की मूर्ति को बेचने की ठानी। ऐसा विचार कर वे एक धनी सेठ के पास गये। सेठ ने उन दोनों मूर्तियो को परखा और बोला, "पडितजी! यह जो गणेशजी की मूर्ति है उसके आपको दूंगा बीस रुपये और यह दूसरी जो चूहे की मूर्ति है उसके दूंगा चालीस रुपये।" पडितजी हैरान होकर बोले, "भाई, यह कैसे

हो सकता है ? गणेश भगवान के तुम बीस लगा रहे हो और उनके वाहन चूहे के चालीस।" सेठ बोला, "यह मैं कुछ नहीं जानता! मेरा प्रयोजन तो सोने से है। सोना जिसमे अधिक है बस उसी का अधिक मूल्य होगा, बाहर मे कोई कुछ भी हुआ करे।"

हमारी सच्ची सम्पत्ति हमारे सद्गुण है। बाह्य आकृति हमारी कुछ भी हो यदि हमारे अन्दर मे छल, कपट, झूठ आदि अवगुण भरे हो तो हम सच्चे धनी नही, सुन्दर भी नही। इसके उल्टे बाहर मे कोई कुरूप हो परन्तु अन्दर उसके सच्चाई, सेवा, सरलता, क्षमा आदि गुणो का वास हो तो वास्तव मे वही सुन्दर कहा जायेगा और वही सच्चा सम्पत्तिवान है। गुणो के कारण ही महात्मा सुकरात कुरूप होने पर भी सारे ससार मे आज भी सर्वत्र पूज्य हो रहे है। वाहन मे सोना अधिक था और उसी के प्रमाण से उसका मूल्य आका गया, बाहरी आकृति से नही।

१२—*न यहां के काम का न वहां के काम का*

एक बार एक सेठ के यहा मुनीम की आवश्यकता हुई। कई उम्मीदवार रिक्त स्थान के लिये आये। उम्मीदवारो की चतुराई की परीक्षा करने के लिये प्रत्येक उम्मीदवार को सेठजी पन्द्रह रुपये देते और कहते इस रकम से तीन चीजे लाओ १—जो यहा अर्थात् ससार के लिये हो, २—जो वहा अर्थात् परलोक के लिये हो, और ३—जो न यहा के लिये हो न वहा के लिये अर्थात् लोक-परलोक दोनो के लिये न हो। जो भी उम्मीदवार आते वे चक्कर मे पड़ जाते थे, उन्हे सूझ नही पडता था कि सेठजी का क्या अभिप्राय है और ऐसी तीन चीजे कौन

सी हो सकती है। अन्त मे, एक दिन एक और उम्मीदवार आये। सेठजी ने उनको भी पन्द्रह रुपये देकर वही काम करने को कहा। उम्मीदवार पन्द्रह रुपये लेकर चला गया और दिन भर वाहर रह कर शाम को सेठ के पास लौटा। सेठजी ने पूछा. "आपने पन्द्रह रुपयों का क्या किया?" "जैसा आप चाहते थे वैसा ही मैंने कर दिया है।" वह उम्मीदवार वोला, "पाच रुपये की मिठाई लाया हूँ, पाच दान मे खर्च कर आया हूँ और पॉच जुए मे गँवा आया हूँ। मिठाई यहा के लिये है, दान वहा के लिये और जुआ न यहा के काम का न वहा के काम का। "उचित उत्तर पाकर सेठ सतुष्ट हो गया और उस उम्मीदवार को अपना मुनीम नियुक्त कर लिया।

उत्तम सेवा के लिये मनुष्य को उसके गुणो की परख करके ही रखना चाहिए।

१३—*स्वधर्म ही श्रेष्ठ*

एक महात्मा एकान्त मे आनन्द से अपनी कुटिया मे रहते थे। उस कुटिया मे एक दिन एक दूसरे महात्मा का आगमन हुआ। उन्होंने कुटिया में रहने वाले महात्मा ने कहा, "क्या तुम ऐसे आलस्य में पड़े रहते हो, लो यह गीता पढा करो, कुछ ध्यान पूजा किया करो।" ऐसा कह कर वे गीता की पुस्तक उनके पास छोड गये। थोड़े दिनो मे गीता को चूहे काटने लगे। चूहो को मारने के लिये महात्मा ने एक विल्ली पाल ली। विल्ली के लिये दूध की आवश्यकता हुई, अतः महात्मा ने एक गौ पाल ली। साथ ही गौ को खिलाने, चराने, दूहाने आदि के अनेक

जजाल करने पडे। थोड़े दिनो मे तो महात्मा एक पूरे गृहस्थी के समान ही बन गये साथ ही जैसे-जैसे उनकी कुटिया में एक-एक चीज की वृद्धि होती गयी, वैसे-वैसे उनकी चिन्ताएँ बढती गयी और उतने अशो मे जीवन का आनन्द कम होता गया। कुछ दिनो बाद वे दूसरे महात्मा उनकी कुटिया मे आये, जब यह सब आडम्बर देखा तो चकित हो गये। जब उन्हे सारा हाल मालूम हुआ तो बोले, "वह कहाँ है गीता, उसे इसी समय जला डाल।" परन्तु अब क्या हो सकता था। वे तो पूरे जजाल मे बँध चुके थे।

उपदेश देने मे पूर्व पात्र की योग्यता अथवा अयोग्यता का विचार अवश्य करना चाहिए।

१४—द्वेष का दुष्परिणाम

एक दरिद्र ब्राह्मण था। अपनी दरिद्रता को दूर करने के लिये उसने वरुण देवता की उपासना की। वरुण ने प्रसन्न होकर ब्राह्मण को एक बडा शख दिया और साथ ही कहा कि जो कुछ ब्राह्मण अपने लिये मागेगा उसका दुगना प्रत्येक पडोसी को स्वत ही प्राप्त हो जायेगा। ऐसे वरदान को पाकर प्रसन्न होने की बजाय ब्राह्मण बहुत दु खी हुआ। उसने शंख को तारे मे बन्द करके रख दिया। वह नही चाहता था कि किसी भी पडोसी को थोडा भी लाभ मिले। ब्राह्मण की स्त्री ने पति को समझाया, "हमे भगवान की दया से ऐसा वरदान भी मिला फिर भी हम पहले ही की तरह दुखी और कंगाल है। यदि पडोसी को लाभ होता है तो होने दीजिये, हमारे दुख तो दूर होगे।" परन्तु

ब्राह्मण ने एक न सुनी और उनकी दरिद्रता पहले के ही जैसी ही बनी रही । आखिर वह ब्राह्मण धन कमाने के विचार से कुछ समय के लिये परदेश चला गया। परदेश गये उसे काफी समय हो गया और इधर उसकी पत्नी धनाभाव से दिन बड़े सकट मे विताने लगी । जब न रहा गया तो तग आकर उसने एक दिन ताला खोलकर तिजोरी मे से शख निकाल ही लिया । शख से उसने धन की प्रार्थना की और उसे मनचाहा धन मिल गया । परन्तु साथ ही, प्रत्येक पड़ोसी के घर मे उससे दुगना धन हो गया । थोड़े दिन मे ब्राह्मण परदेश से लौटा तो देखा कि सभी पड़ोसी बड़े धन-धान्य से पूर्ण है। बडा हैरान हुआ । आखिर उसे उसका रहस्य अपनी पत्नी से मालूम हो गया । अब ब्राह्मण को क्रोध तो वडा आया परन्तु बुद्धि का तेज था। उसने रास्ता निकाल ही लिया । तुरन्त शख निकाला और प्रार्थना करके मॉगा, "हे शंख, मेरी एक आँख फूट जाय !" तुरन्त ही ब्राह्मण की एक आँख फूट गयी, परन्तु साथ ही सारे पडोसियों की दोनों आँखें फूट गयी । इससे भी ब्राह्मण सतुष्ट नही हुआ । उसने शंख से मांगा कि उसके घर मे एक कुआ खुद जाय । उसके घर मे एक कुआ तो बना ही, परन्तु पडोसियो के घर मे दो-दो कुए खुद गये । पडोसी पहले ही अन्धे हो चुके थे, अब वे कुए मे धड़ाधड़ गिरने लगे ।

लाभ हो तो सारा का सारा एकमात्र हमारा ही हो, साथ में दूसरे का न हो जाय, ऐसी ईर्ष्यालु मनोवृत्ति वाले लोग ससार मे बहुत है, दूसरी ओर ऐसे त्यागी पुरुष भी है जो अपनी वड़ी मे वड़ी हानि उठाकर भी दूसरोंको लाभ पहुँचाते है ।

१५—आपसी फूट का फल

प्राचीन समय की बात है। वह जगली युग था। घोड़े व भैंस मे लड़ाई हो गयी। भैंस बलवान थी अपने सीगो से घोड़े की मरम्मत करने लगी। घोड़ा अधिक देर ठहर नही सका और उसने मनुष्य के पास जाकर सहायता की प्रार्थना की। घोड़े ने मनुष्य से कहा, "आप मेरे ऊपर बैठ जाइये और चलकर भैंस को मारिये उसने मुझे बहुत दुखी कर रखा है।" मनुष्य राजी हो गया, घोड़े पर सवार होकर भैंस को मार-पीट कर घर ले आया और आनन्द से वह और उसका परिवार उसका दूध पीने लगा। इधर घोड़े ने रूखसत माँगी, क्योकि उसका काम भैंस को पिटवाने का हो चुका था। परन्तु मनुष्य अब उसे क्यों छोड़ने लगा। घोड़े की उपयोगिता उसे अच्छी तरह मालूम हो गयी थी। उसने भैंस के पास ही घोड़े को भी सवारी के काम के लिये बाँध दिया। घोड़े और भैंस ने एक दूसरे को देखा और पछताये, "हाय, हम आपस में क्यो झगड़े?"

आपसी फूट दोनों पक्षो को बरबाद कर देती है।

१६—सीख कौन दे सकता है

एक मनुष्य अपने रोग की चिकित्सा कराने एक वैद्य के पास पहुँचा। वैद्य ने रोगी का अच्छी तरह निरीक्षण किया और अन्त मे कहा, "तुम एक सप्ताह पश्चात आना।" एक सप्ताह होने पर वह मनुष्य उस वैद्य के पास फिर गया। वैद्य ने कहा, "बात सीधी-सी है, तुम गुड खाना छोड दो, इसी से ठीक हो जाओगे।" ऐसी साधारण सलाह सुनकर वह मनुष्य थोड़ा हैरान

हुआ। वैद्यजी से बोला, "ठीक है, आपने जैसा कहा वैसा मैं करूँगा, परन्तु मेरी एक जिज्ञासा कृपा कर दूर कीजिये। यह सीधी-सादी बात आपने उसी रोज क्यों नही कह दी, ऐसा करते तो मुझे एक सप्ताह तक क्यो इन्तजार करना पडता ?" वैद्यजी बोले, "तुम ठीक कहते हो, परन्तु बात यह है कि पहले जिस दिन तुम मेरे पास आये तब मै स्वय भी गुड को बड़े स्वाद से खाता था। वह मेरे अनुकूल नही पड़ता था, परन्तु मै लाचार था। उस दिन मैने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि मै आज से गुड छोडता हूँ। मुझे गुड खाये एक सप्ताह हो गया है और अब मै इस योग्य हो गया हूँ कि दूसरो पर अपनी सलाह का प्रभाव डाल सकूँ। मेरी वाणी मे पहले वह सामर्थ्य नही हो सकती थी कि दूसरे मेरी बात सुने। और उस समय तुम मेरी सलाह मानते भी नही।

हम जीवनमे दूसरों को प्रभावित करने में प्राय: इसीलिए असफल रहते है, क्योंकि हमारी कथनी और करनी मे बडा अन्तर होता है। एक डॉक्टर जो स्वयं धूम्रपान करता है वह अपने मरीज का धूम्रपान छुडाने मे प्राय. सफल नही हो सकता।

१७—क्या ईश्वर की रचना दोष-पूर्ण है ?

तीन फैशनेबल युवक थे। प्रत्येक अपने को बडा बुद्धिमान समझता था। उनकी बातें सदा अभिमान एव अहकारपूर्ण होती थी। सभी बातों में उनकी दोष-दृष्टि हुआ करती थी। कभी कहते यह बात ठीक नही, कभी कहते वह बात ठीक नही। वे ईश्वर की रचना मे भी दोष निकालने चले। एक दोष बतलाता दूसरा कहता "ठीक" और तीसरा नोट करता जाता था। ये

कहते भला संसार मे सर्प की क्या आवश्यकता है? बबूल के वृक्ष मे काटे क्यो? पतली-सी बेल पर तो इतना भारी तरबूज और इतने बडे वट वृक्ष के फल इतने नन्हे? चलते-चलते युवक एक बगीचे मे पहुँचे। अकस्मात् एक वट वृक्ष के नीचे ही खानपान तथा मनोरंजन के लिये बैठे। थोड़ी देर मे विश्राम करने लगे। वह युवक, जिसे सदा दोष ही निकालने की आदत थी, वृक्ष के नीचे लेटा हुआ था कि यकायक ऊपर से वट वृक्ष का फल सीधा उसकी नाक पर आकर गिरा। फल छोटा था अतएव विशेष हानि नही हुई; परन्तु इस घटना से उसे आज पहली बार शिक्षा मिली। वह नवयुवक थोड़ा सोचने पर विवश हुआ। 'यदि इस वट वृक्ष के छोटा फल न लगकर तरबूज जैसा बडा फल लगता तो आज मेरा क्या हाल हुआ होता?" धीरे-धीरे उसकी विचारशीलता बढती गयी और उसे ईश्वर की रचना और प्रकृति मे बुराई की जगह भलाई दिखने लगी।

दोष निकालने से पूर्व यदि हम गहराई से विचार कर लिया करें तो सम्भव है दोष बाहर न होकर केवल हमारी दृष्टि में ही हो।

१८—सेवा के आकड़ी को सेवा की कमी नहीं

भक्त हनुमान सदा ही राम की सेवा मे लगे रहते थे। इससे भरतादि भाइयो को राम की सेवा का पर्याप्त अवसर नही मिलता था। एक बार हनुमान २-४ रोज को भगवान राम के ही काम से कही गये। भरत लक्ष्मण आदि ने यह अवसर हनुमानजी से सेवा छीन लेने का अच्छा समझा। सेवा इन सब में बाट ली गयी और जब हनुमान लौटे और उन्होंने अपनी सेवा वापस

माँगी तो यह रूखा उत्तर सुनना पड़ा। "आपने वहुत सेवा कर ली अव कुछ दिन विश्राम कीजिये। हमें भी अवसर दीजिये।" परन्तु हनुमानजी को तो राम की सेवा में ही सच्चा विश्राम मिलता था। साथ ही, कुछ समझ में नही आता था कि क्या सेवा करूँ? क्योंकि सीता, भरत, लक्ष्मण एव शत्रुघ्न ने सभी सेवा वांट ली थी और कोई कुछ भी देने को तैयार नही था। वे अधिक आग्रह करते तो उद्दण्डता समझी जाती। इतने मे श्रीराम ने जम्हाई ली। जम्हाई लेते समय चुटकी वजाने की हमारी एक प्राचीन प्रथा है, क्योकि उस समय हम मुँह से राम नाम तो ले नही सकते तो चुटकी बजाकर राम नाम की ध्वनि निकालने की चेष्टा करते है। हनुमानजी ने वही काम शुरू कर दिया। वे वरावर राम के मुख को देखते रहते और जव-जब राम जम्हाई लेते तव-तव हनुमानजी चुटकी वजाया करते। दिन भर तो यह क्रम चलता रहा, परन्तु रात्रि में जव राम सोने गये तव शयनागार मे वे कैसे प्रवेश कर सकते थे। आखिर सोच कर वे महल की छत पर जा वैठे और लगातार चुटकी वजाने लगे। लगातार इसलिए कि उन्हे नही मालूम कि कव श्रीराम जम्हाई लेते हों। उधर भगवान भी भक्त की सेवा को व्यर्थ कैसे जाने दे सकते थे अतः राम जम्हाई के लिये मुँह फाड़कर वैठ गये। यदि राम एक क्षण के लिए भी मुँह वन्द करते है तो भक्त की सेवा व्यर्थ जाती है। राम का निरन्तर मुँह खुला होना सवके लिये वहुत हैरानी की वात हो गयी। अपनी अपनी वुद्धि के अनुसार वहुत उपाय उन्होंने किये, परन्तु सव निष्फल हुए। अन्त मे, वशिष्ठजी को वुलाया गया। गुरु की पैनी दृष्टि ने लाचार होकर आते ही कुछ-कुछ भांप लिया।

उन्होंने देखा कि राम की ऐसी अवस्था में जब सभी चिन्तित होकर उन्हे घेरे चारों ओर से खडे है, तब हनुमानजी राम की सेवा मे दुख सुख मे अग्र है वे ही वहां उपस्थित नही हैं। अब तो हनुमानजी की तलाश की गयी। ढूँढते-ढूँढते उनका पता लगा तो देखते है कि वे छत पर आसन जमाकर दोनों हाथो मे लगातार चुटकी बजा रहे है। उन्हे राम के पास चलने को कहा गया, तो वे उसी प्रकार दोनो हाथो से चुटकी बजाते बजाते राम के पास पहुँचे। इधर न इनकी चुटकी बन्द हो रही थी न उधर राम का मुँह फाडना। राम और हनुमान दोनो को एक साथ ऐसी अवस्था मे देखकर भरतादि को स्थिति समझने मे देर नही लगी। उन्होने हनुमानजी से क्षमा मांगी और उनकी सेवा उन्हे लौटा दी। फिर तो हनुमानजी ने भी चुटकी बजाना बन्द कर दिया और राम के मुँह की स्थिति भी साधारण हो गयी।

सच है, सेवा के सच्चे आग्रही को सेवा की कभी कमी नही हो सकती।

१६—ईश्वर के लिये क्या कुछ असम्भव है ?

सदा ईश्वर का भजन करने वाले रमते राम नारदजी एक बार कौरवो की सभा मे पहुँचे। कौरवो ने पूछा, "महाराज अभी आप कहाँ से पधार रहे है।" नारदजी ने बताया, "मैं अभी द्वारकापुरी से आ रहा हूँ।" "तब तो आप श्रीकृष्ण से अवश्य मिले होंगे, कहिये उनके क्या समाचार है ?" नारद बोले, "मैं जिस समय उनके पास पहुँचा तब वे सूई के मुँह मे हाथी पिरो रहे थे और लोटे मे समुद्र उँडेल रहे थे।"

दुर्योधन आदि उपस्थित कौरवो ने यह सुनकर बड़ा अट्टहास किया—"वाह? खूब कही, महाराज! यह सब हम विश्वास नही कर सकते। मालूम होता है कि आप उनके पास गये ही नही।" इसके बाद नारद पाडवो की सभा में पहुँचे। वहां भी पाडवों ने यही प्रश्न पूछा और नारदजी ने उत्तर दिया जो कौरवों को दिया था। पाँडवों ने कहा, "हाँ महाराज, ठीक ही है। भगवान के लिये क्या असम्भव है।" उनकी ऐसी ही अटूट श्रद्धा भगवान मे थी। फिर भी उनमें से भीम से नही रहा गया और उन्होने पूछा, "महाराज, हम आपकी बात मान तो गये, परन्तु कुछ समझ मे नही आया, इन बातो का रहस्य समझाइये।" नारद ने कहा, "देखो, सुई की नोक के बराबर हमारी आँख की पुतली है, परन्तु इसमे विशाल पर्वत नदी आदि सारा दृश्य-जगत समाया हुआ है, यही सुई के छिद्र मे हाथी पिरोना हुआ। इसी प्रकार छोटे से मस्तिष्क मे कितने वर्षो की व कितने विषयो की असख्य बाते समा रही है जिन्हे हम पल भर मे उपस्थित कर देते है। यही लोटे मे समुद्र उड़ेलना हुआ।"

श्रद्धा और विश्वास का सहारा लिये बिना क्या कोई ईश्वर की अचरज भरी करनी को समझ सकता है?

२०—*अपने अपने सब कोई*

एक सेठ अपने परिवार के लिए धन कमाने हेतु विदेश यात्रा के लिये निकले। पिता को घर से गये बहुत समय हो गया। इतने दिनो तक कोई समाचार न मिलने से घर के लोग अत्यन्त चिन्तित हो गये। आखिर सेठ का सबसे बड़ा लड़का अपने पिता

को खोजने निकला। कई नगरो मे उसने अपने पिता के बारे मे पूछताछ की। इसी प्रकार घूमते-घूमते वह एक दिन एक नगर की धर्मशाला मे ठहरा। उसी धर्मशाला के पास के एक कमरे मे उसका पिता भी ठहरा हुआ था, परन्तु उन दोनो की भेट नही होने से एक दूसरे को पता नही चला। रात्रि मे लडके के अकस्मात पेट मे बहुत जोर का शूल हुआ। अब लडका जोर शोर से मारे दर्द के चिल्लाने लगा। सेठ ने सब कुछ सुना, परन्तु उसने उसकी ओर कुछ ध्यान नही दिया और न उसने जाकर उसकी दुख-सुख की बात ही पूछी। इधर लडके का ठीक उपचार न होने से उसका दर्द बढता ही गया और अन्त मे उसका प्राणान्त हो गया। यह काण्ड देखकर धर्मशाला का रखवाला भी घबराया। उस पर कोई दोष न लगे, इसलिए वह सेठ के पास पहुँचा और उनसे विनती की कि आप मृत व्यक्ति को चल कर देख ले और चूँकि घटना आपकी जानकारी में हुई है अत: यदि पूछताछ हो तो वे अधिकारी के समक्ष आवश्यक बयान दे दे। परन्तु सेठ ऐसे झमेले मे क्यो पडने लगे, उन्होंने स्पष्ट कहा, "मैं यह सब जिम्मेदारी लेने को तैयार नही हूँ।" रखवाले ने अनेक विनती की, परन्तु उन्होने एक न सुनी। आखिरकार लडके की अत्येष्टि कर दी गयी। उधर दूसरे दिन सेठ ने मृतक के नौकर से उसके पिता के नामादि के बारे मे कौतूहलवश पूछताछ की। तब मालूम हुआ कि वह मृत तो और कोई नही स्वय उसका ही लडका था। अब तो सेठ सिर पीट-पीट कर रोने लगा, कैसा मैं अभागा कि पास ही लडका था, और मैंने ऐसे समय उसकी कुछ सेवा तो दूर उसका मुख भी नही देख सका।

हमारे मे मेरा-तेरा का भाव इतना प्रबल है कि अपने के सिवाय अन्य के दुख मे दुखी होना विरले ही जानते है ।

२१—बुराई का जोर बुरे पर

दो भाई थे । एक भूत की पूजा करता था, दूसरा भगवान की । भूत भगवान की पूजा करने वाले भाई को नाना प्रकार के लोभ-प्रलोभन दिखाता था, जिससे वह उसकी ओर आकृष्ट हो; परन्तु जब वह भाई इनसे विचलित नही हुआ तब वह भूत उसे तरह-तरह से डराने लगा । परन्तु जब इससे भी वह भाई अपनी भगवद्भक्ति मे अटल रहा, तब तो भूत बड़ा निराश हुआ । एक दिन भूत ने अपनी पूजा करने वाले भाई को स्वप्न दिया और कहा, "देख तू अपने भगवान की पूजा करने वाले भाई को मना ले वरना तुझे मार डालूँगा ।" भूत-भक्त भाई ने कहा, "वाह, यह खूब रही ! मैं तुम्हारी पूजा करूँ और तुम मुझे ही मारो ।" भूत ने कहा, "क्या करूँ, मेरा वश तुम्हारे ऊपर ही चलता है, क्योकि वह दूसरा तो मुझे मानता ही नहीं ।"

शैतान का जोर शैतान पर ही चलता है जिसमें शैतानियत नही, उसका शैतान क्या बिगाड सकता है । काम, क्रोध, लोभ ही बड़े शैतान है । गीता ने इन्ही तीनो को नरक के द्वार बताये है, परन्तु इन तीनों मे से एक को भी जो अपने अन्दर घर करने नही देता उसका कोई क्या बिगाड़ सकता है ?

२५—कर्जा चुकाना ही पड़ता है

एक सच्ची घटना के आधार पर यह कथा है । एक डाकू ने एक धनी सेठ का धन-माल लूट लिया और फिर उसे जान

से मार डाला। मरने से पहले सेठ ने कहा, "वदला लूँगा।" कालान्तर मे डाकू के एक पुत्र का जन्म हुआ। यह उसकी इकलौती सन्तान थी। वच्चा थोडा ही वडा हुआ कि वीमार पड गया। डाकू के पास धन का अभाव तो था ही नही, और सन्तान भी एक ही थी। अतः उसने उपचार मे कोई कमी नही की, परन्तु सव कुछ करने पर भी वच्चे की दशा मे कोई सुधार नही हुआ। इस प्रकार लडका ८ वर्ष तक वीमार रहा जिसके कारण डाकू एकदम निर्धन व दरिद्र हो गया। इधर वच्चे का रोग वढता ही गया और एक दिन उसकी मृत्यु हो गयी। मरने से थोडी ही देर पूर्व वच्चा वोल उठा, "मैं वही सेठ हूँ जिसका धन तुमने लूटा था।"

जिसके साथ हम वुरा करते है उसी को निमित्त वनाकर एक न एक दिन ईश्वर हमे हमारी वुरी करनी का दण्ड देते है। क्या ही अच्छा हो हम शुरू से ही वुराई से वचें और सदा भलाई करे।

२३—*जहां खोई वहीं खोजने से मिलेगी*

अधेरे मे काम करती एक वुढिया की सुई खो गयी। वही अधेरे मे वह उसे खोजने लगी। किसी एक ने पूछा, "माई, क्या कर रही हो?" "वेटा, सुई खो गयी है उसी को खोज रही हूँ।" "माई, अधेरे मे सुई कैसे मिलेगी, जाओ प्रकाश मे खोजो।" तव एक जगह जहां प्रकाश हो रहा था, वुढिया सुई उस प्रकाश मे जाकर खोजने लगी। एक दूसरे व्यक्ति ने पूछा, "माई! यहां क्या कर रही हो?" "वेटा, सुई खो गयी है उसी को खोज रही हूँ।" "परन्तु यह तो वताओ, तुम्हारी सुई खोई कहां पर है?" व्यक्ति ने पूछा। "वेटा, खोई तो उधर अधेरे मे है, परन्तु एक

ने सलाह दी कि प्रकाश में जाकर ढूँढो। अतः प्रकाश में खोज रही हूँ।" माई, ऐसे सुई नही मिलने की, जिस जगह सुई खोई है उसी जगह प्रकाश करो और वही उसे ढूँढो।" बुढिया ने सलाह मानकर आखिर वैसा ही किया और तत्काल उसे सुई मिल गयी।

हम जगह-जगह ईश्वर को, अपनी आत्मा को, सच्चे आनन्द को खोजते फिरते है, परन्तु वह तो जहाँ बैठे है वही प्राप्त है। दर-दर भटकने से क्या होगा ?

२४—सबसे बड़ा सहारा ईश्वर के नाम का

महाभारत के अन्तिम भाग मे एक बार युधिष्ठिर ने भगवान कृष्ण से पूछा, "महाराज, बताइये कि कलियुग के क्या लक्षण होते है और उससे मुक्ति का क्या उपाय है ?" श्रीकृष्ण ने सीधा उत्तर न देकर एक दिन सभी पाण्डवो को अलग-अलग दिशाओं में भेजा और कहा कि अपने अनुभव से जो बात तुम्हें सबसे अधिक विचित्र लगे वह मुझे आकर बताओ। थोड़े दिनो मे पाण्डव लौटकर आये और उन्होने अपने-अपने अनुभव इस प्रकार कहे:—

युधिष्ठिर ने कहा, "एक कुएँ पर देखा कि एक छोटी गड्वी ने दस गड़वियों को भर दिया, परन्तु दस गगरे एक गड्वी को नही भर सके।"

भीम ने कहा, "मैंने पास-पास तीन तालाब देखे। पहले तालाब का पानी बीच के दूसरे तालाब को छोड़कर तीसरे तालाब में जा रहा था।"

अर्जुन ने कहा, "मैंने हंस देखे। उनके पंखों पर वेद मंत्र लिखे थे और वे बैठे-बैठे एक शव को खा रहे थे।"

नकुल, सहदेव ने कहा, "हमने एक केले का वृक्ष देखा। उसके पत्ते एक ववूल पर हवा करते थे, परन्तु चिरे हुए लौटते थे।"

कुन्ती, द्रौपदी ने देखा कि एक पहाड की चोटी से एक वडी शिला लुढकती हुई आई। वह मार्ग मे अनेक वृक्ष, पत्थर आदि वाधाओ को तो पार कर गयी, परन्तु अन्त मे एक तिनके के सहारे आकर अटक गयी।

जब सब पाण्डव एकत्रित हुए, तब श्रीकृष्ण ने इन विचित्र घटनाओ का रहस्य समझाया। युधिष्ठिर के अनुभव पर उन्होने कहा, "कलियुग के गरीव माता-पिता दस सन्तानों का पेट भर देंगे, परन्तु दस सन्तान मिलकर भी माता-पिता से जान वचाते फिरेंगे।"

भीम को उन्होंने वताया कि कलियुग मे एक भाई दूसरे भाई की मदद न करके अन्य की मदद किया करेंगे।

अर्जुन से उन्होने कहा कि कलियुग मे उच्च धार्मिक कोटि के कहलाने वाले मनुष्य भी भक्षाभक्ष्य का विचार नही करेंगे।

नकुल सहदेव को उन्होने वताया कि कलियुग मे महात्मागण अपने सदुपदेश एवम् सत्कार्य से सासारिक लोगो पर अपनी कृपा करेंगे, परन्तु सासारिक लोग महात्माओ को सदा अपने वाग्वाणो से वींधा करेंगे।

कुन्ती एवम् द्रौपदी ने जो अनुभव किया उसे लक्ष्य कर श्रीकृष्ण ने कहा, "कलियुग मे वाधाएँ तो अनेक होंगी, परन्तु मनुष्य को एक ईश्वर के नाम का सहारा वचा लेगा और वही उसकी मुक्ति का उपाय होगा।"

२५—भक्त अधिक किसके

भगवान विष्णु भक्तों के ध्यान में बैठे थे कि लक्ष्मीजी ने भगवान से कहा, "महाराज, आप किसकी चिन्ता मे बैठे है भक्त तो सब मेरे ही है।" "अच्छा तो परीक्षा की जाये" ऐसा कह कर विष्णु एक अजीबो-गरीब वृद्ध ब्राह्मण का भेष बनाकर यमुना नदी के तट पर एक ओर आकर बैठ गये। बडी संख्या में स्त्री-पुरुष वहाँ आते, नदी में स्नान करते और चले जाते। इस वृद्ध की ओर या तो देखते ही नही अथवा देखते हुए भी अनदेखी कर देते। आखिर एक भक्त उनके पास गये और कहा, "आप यहाँ क्यों पड़े है, मेरे घर पर चल कर रहिये।" भक्त ने सोचा, यह वृद्ध है इस पर व्यय तो अधिक करना नही पड़ेगा, घर में पूजा-पाठ कर लिया करेगा और साथ ही घर की रख-वाली भी हो जायेगी। विष्णुरूपी वृद्ध ने सेवा स्वीकार कर ली। उनकी केवल एक शर्त थी कि उन्हे कभी घर से निकलने को नही कहा जायेगा। भक्त मान गये।

कुछ दिन पश्चात लक्ष्मी एक योगिन के रूप मे वही जमुना के किनारे पहुँची। उनके रूप-लावण्य ने सभी को आकर्षित कर लिया और चारों ओर उनकी पूछ होने लगी। विष्णु को अपने घर मे रखने वाले भक्त भी पीछे न रहे और उन्होंने लक्ष्मी को अपने घर भोजन के लिये निमन्त्रित किया। लक्ष्मीजी ने निम-न्त्रण स्वीकार कर लिया। उनका एक नियम था कि वे अपने ही बर्तनों मे भोजन करती थीं। अतः भोजन से पूर्व उन्होंने अपने सोने के बर्तन निकाले और भोजन करने बैठी। भोजन के पश्चात् लक्ष्मी ने उन बर्तनों को उठाकर फेंक दिया, क्योंकि उनके ही नियम के अनुसार वे एक बर्तन में दुबारा भोजन नहीं करती थीं। भक्त ने यह सब कुछ आश्चर्य मे देखा और फेंके

हुए वर्तनो को उठा लाया। ऐसे स्वर्ण के वर्तन पाकर वह वहुत प्रसन्न हुआ। इस प्रकार नित्य वह लक्ष्मी को भोजन कराता और उसे सोने के वर्तन प्रतिदिन मिलने लगे। एक दिन लक्ष्मीजी भक्त से वोली, "मुझे यहाँ स्थानाभाव से कष्ट है, मैं जा रही हूँ।" भक्त उनके चरणो मे गिर गया और वोला, मै आपके लिये सव सुविधा कर दूँगा आप यही रहिये।" और सुविधा तो वह कुछ कर नही सका उसने उन्ही विष्णुरूप वृद्ध से कहा, "वावा, आप अपना कमरा खाली कर दो!" वृद्ध ने वहुत कहा-सुना, मै कहाँ जाऊँगा, मेरे कष्टो का खयाल करो, परन्तु भक्त एक न माना। वृद्ध ने भक्त को उसके वचन का स्मरण कराया परन्तु भक्त पर तो अव सोना सवार हो चुका था। उसने कहा, "वावा, आप जाओ, नही तो मैं धक्का मारकर निकाल दूँगा। आप वचन की वात करते हो, वचन-पालन मैंने इतने दिन किया उससे मुझे क्या मिला?" आखिर वृद्ध घर छोडकर जाने लगे परन्तु यह क्या उनके पीछे-पीछे तो लक्ष्मी भी जाने लगी। अव तो भक्त वडा गिडगिडाया, परन्तु लक्ष्मी ने कहा, "मैं ऐसे मनुष्य के घर मे कदापि नही रहूँगी जो वचन देकर उसे भंग करता है।" रास्ते मे जाते-जाते विष्णु वोले, "मै स्वीकार करता हूँ कि ससार मे भक्त तुम्हारे ही अधिक है।"

जव तक दो दिन टिकने वाली सांसारिक चीजो मे हमारा मन इतना रम रहा है कि हम अपने दिये वचन की सत्यता की भी परवाह नही करते तव तक हमे ईश्वर-भक्ति जैसी दुर्लभ वस्तु कैसे प्राप्त हो सकती है।

२६—*माया-दर्शन*

सुदामा ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की कि कृपा कर एक वार मुझे अपनी माया दिखाइये। यों तो यह सारा संसार ईश्वर की

माया ही है, परन्तु सुदामा अधिक स्थूल रूप से ईश्वर की माया का अनुभव करना चाहते थे। जब उन्होने अधिक आग्रह किया तब उस समय तो श्रीकृष्ण चुप हो गये। कुछ समय बाद मे एक दिन श्रीकृष्ण और सुदामा दोनो साथ जमुना नदी पर स्नान करने गये। श्रीकृष्ण अभी अपने वस्त्र उतार ही रहे थे कि सुदामा आगे बढे और पानी मे गोता लगाया। गोता लगाते ही वे पानी के नीचे ही नीचे बहने लगे और एक दूर देश मे जाकर निकले। उस देश का राजा एक दिन पहले ही मर चुका था और वहा की प्रथा के अनुसार दूसरे दिन नगर के द्वार से सर्वप्रथम सुदामा का प्रवेश होने के कारण उन्ही को उस देश का राजा बना दिया गया। थोड़े समय पश्चात् सुदामा का एक सुन्दर राजकुमारी से विवाह हो गया और कालान्तर मे अनेक बच्चे भी हो गये। सुदामा आनन्द से जीवन बिताने लगे परन्तु सदा एक से दिन सबके कहाँ रहते है? एक बार उनकी पत्नी बीमार पड़ी, बहुत कुछ चेष्टा करने पर भी उसे बचाया न जा सका और उसकी मृत्यु हो गई। उस देश का रिवाज था कि यदि पत्नी मर जाय तो पति को उसके साथ 'सता' होना पड़ता था। अतः सुदामा को भी रिवाज के अनुसार सता होने को कहा गया। ऐसी अनोखी बात सुनकर सुदामा तो दग ही रह गये। वे अपनी पत्नी के दुःख को तो भूल गये, उलटे उन्हे अपनी प्राण-रक्षा की फिकर पड़ी। सुदामा ने बहुत चेष्टा की कि उन लोगो से छुटकारा मिल जाये, परन्तु वे लोग कहा मानने वाले! अन्त मे सुदामा ने जब देखा कि किसी भी प्रकार पिण्ड छूटने वाला नही तब उन्होंने चतुराई से काम लिया। बोले, "अच्छा तो मै तैयार हूँ। चिता पर चढने से पूर्व स्नान कर शुद्ध हो आता हूँ।" लोग सहमत हो गये। स्नान करने के लिये जैसे ही सुदामा ने

गोता लगाया कि वे पहले की भाति पानी के नीचे नीचे वहने लगे। इस वार वे प्राणो का मोह त्याग कर स्वय अपनी चेष्टा से वहे चले जा रहे थे। वहते-वहते जव वहुत दूर चले गये तव उन्होने पानी के ऊपर सिर उठाया तो उनके विस्मय का अन्त नही, उन्होने देखा घाट वही है जहां श्रीकृष्ण के संग स्नान करने आये थे। और भी देखा कि श्रीकृष्ण नहाने की तैयारी मे खडे हुए है। घवराये हुए तो थे ही, श्रीकृष्ण को देखते ही वोल पडे, "महाराज ! भागिये-भागिये....वे लोग पीछा करते हुए आ रहे है और थोडी देर मे मुझे पकड़कर मार डालेगे।" श्रीकृष्ण ने कहा, "अरे भाई, कौन आ रहे है, क्यो आ रहे है, किसको मार डालेगे और क्यों ? तुम्हे यह हो क्या गया है, अभी पल भर पहले ही तो तुमने पानी मे गोता लगाया है। पानी से वाहर निकलकर ये वहकी-वहकी वाते क्यो कर रहे हो ?" तव सुदामा ने आद्योपान्त सारी कथा सुनाई जो उन पर वीती थी। सुनकर श्रीकृष्ण हँसने लगे। उन्होने अपनी माया समेट ली। सुदामा को भी समझने मे देर नही लगी कि यही उनकी माया का दर्शन था जिसे देखने को स्वय उन्होने प्रार्थना की थी। कांपते हुए स्वर मे सुदामा ने प्रार्थना की, "हे भगवन् ! आगे से आप अपनी माया का जाल हम पर कभी न डाले ! अभी-अभी जो कुछ देखा उसी को याद कर कर के मैं थर-थर कॉप रहा हूँ और धीरज नही वध रहा है।"

ईश्वर की शक्ति का ही दूसरा नाम माया है। वह शक्ति गहन है और उसको समझना कठिन है। माया के ही कारण एक क्षण एक वर्ष के वरावर मालूम पड़ सकता है और एक वर्ष क्षण जैसा।

२७—जाको राखे साइयां

एक वृक्ष पर एक कपोत और कपोती का जोड़ा आनन्द से बैठा था। उधर से एक शिकारी आ पहुँचा और उसने कपोत-कपोती पर अपने तीर का निशाना साधा। ऊपर आकाश की ओर से एक बाज उड़ता हुआ आया और उसने भी कपोत-कपोती को अपना लक्ष्य बनाया। इस प्रकार दो ओर से उन कपोत-कपोती पर विपत्ति आ गई और बचने का कोई मार्ग दिखाई नही पडा। इतने ही में एक सर्प वृक्ष के पास से निकला और उसने शिकारी के पैर पर काट खाया। काटने के कारण जो शिकारी चौंका तो उसके हाथ का तीर जाकर कपोत-कपोती के बजाय बाज के लगा और बाज की तुरन्त मृत्यु हो गयी। उधर शिकारी भी जीवित न रह सका। इस प्रकार सब ओर से सकट आने पर भी ईश्वर की इच्छा कि कपोत-कपोती जीवित बच गये।

कहा भी है, "जाको राखे साइयां मार सके ना कोय, बाल न बाँका कर सके जो जग बैरी होय।"

२८—बुद्धिमानी बड़ी बात

एक बार एक राजा के तीन लड़कों का बँटवारा हुआ। आधा हिस्सा पहले को, एक चौथाई दूसरे को और पाँचवा हिस्सा तीसरे को और शेष अन्य कार्यों के लिये छोड़ दिया गया। जब बँटवारे का समय आया तो और तो सब चीजों का बँटवारा हो गया, परन्तु हाथियों का बटवारा होना मुश्किल काम बन गया। हाथियों की सख्या १९ थी और उन्हें तीनों भाइयों में किस प्रकार बाँटा जाये यह कुछ समझ मे नहीं आया। तीनों भाइयों ने चेष्टा तो बहुत की, परन्तु समस्या का हल नहीं निकला। आखिर

तीनों भाई अपना मामला लेकर राज्य के मंत्री के पास पहुँचे। मंत्री अनुभवी और बुद्धिमान था। उसने अपना हाथी मंगवाकर उन १९ हाथियों मे मिला दिया और कहा, "अब तुम अपने-अपने हिस्से करो।" ऐसा करने पर पहले भाई को दस, दूसरे को पांच और तीसरे को चार हाथी मिल गये। शेष एक हाथी बचा वह मत्री को अपना मिल गया। तीनो भाई मंत्री की बुद्धिमानी पर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उनसे प्रार्थना की कि वे यही रहें और सदा उनका मार्ग-दर्शन करते रहे।

हमारी कठिन समस्याये सरलता से सुलझ सकती है और मार्ग निकल सकता है यदि अपने से बड़े बुद्धिमान एवं अनुभवी से परामर्श ले। जीवित वस्तु का बँटवारा टुकड़े करके नही हो सकता अत: इस अवसर पर विशेष ढग से विचार करने की आवश्यकता थी जो लड़को के बस की बात नही थी।

२९—*निम्न के त्याग बिना उच्च की प्राप्ति नहीं*

एक राजा ने अपने मंत्री को आज्ञा देकर एक विशाल, सुन्दर एवं रमणीय महल बनवाया। महल के चारों ओर एक सुन्दर बगीचा बनवाया। बगीचे मे रंग-बिरंगे पुष्प, तरह-तरहके पशु, खाने-पीने की दुकाने एव प्रिय लगने वाले कला-केन्द्रो का भी प्रबन्ध था। इसी प्रकार के बहुत से आकर्षण थे। जब सब कुछ बन चुका तब राजा ने ऐलान किया कि महल के बीचों-बीच मैं स्वय रहूँगा। जो व्यक्ति मेरे तक पहुँच जायेगा वह सारे महल व बगीचे का मालिक बन जायेगा। अनेक लोग उस बगीचे मे गये। वहा पहुँचकर वे सगीत सुनते, पुष्प देखते, खाते-पीते फिर नरम-नरम घास पर सो जाते। इतने मे सायंकाल

हो जाता और माली उन्हें बाहर निकाल देता। सभी लोगों की ऐसी दशा हो गयी कि बाहरी सौन्दर्य का लोभ छोडकर आगे जाना उनके लिये मुश्किल हो गया। अन्त में, देखने में सीधा-साधा एक वृद्ध पुरुष वहां आया। उसने किसी भी ओर ध्यान नही दिया और वह आगे बढता ही चला गया। जाते-जाते वह राजा के पास पहुँच गया। अब तो घोषणा के अनुसार वह सारे ऐश्वर्य का मालिक भी बन गया और जब चाहता तभी वह ऐश्वर्य का उपभोग कर सकता था।

यह कथा हम सभी पर सत्य उतरती है। संसार में आकर हम बाहर-बाहर से प्रिय लगने वाली पर अन्त मे अत्यन्त दु:खदायी ऐसे अल्प सुख भोग का आनन्द लेने में फँस जाते है। हमारी मजिल, हमारे जीवन का उद्देश्य आंखों से बिल्कुल ओझल हो जाता है। हमारी दशा उस मनुष्य की सी हो जाती है, जो धन कमाने को निकला हो, परन्तु सब कुछ गँवा कर घर लौटे।

३०—*अपनी आत्मा ही सबसे महान*

एक भक्त गणेशजी की पूजा किया करते थे। एक दिन गणेशजी के ऊपर एक चूहा चढा हुआ देखा—"ओहो यह चूहा कितना महान है" उसने कहा, और उसी दिन से वह गणेशजी को छोड़कर चूहे की पूजा करने लगा। एक दिन वहां बिल्ली आ पहुँची तो उसे देखकर चूहा भाग खड़ा हुआ। फिर क्या था, अब तो प्रतिदिन बिल्ली की पूजा होने लगी। बिल्ली को एक दिन कुत्ते के डर से भागते देखा। तब तो कुत्ता ही पूज्य हो गया। एक दिन उसने देखा कि उसकी स्त्री हाथ मे बेलन लेकर

कुत्ते का पीछा कर रही है और वह भाग रहा है। उस दिन से उसने स्त्री की पूजा शुरू कर दी। कुछ दिन बाद वह अपनी स्त्री से लड़ पड़ा। स्त्री इतनी डरी कि वह अपने पीहर भाग गई। तब तो उस मनुष्य ने सोचा कि मैं ही सबसे बड़ा हूँ क्योकि मेरे डर से स्त्री भाग गयी। अब तो वह स्वय ही अपनी पूजा का पात्र बन गया। अच्छा तो अपने मे पूजा मैं किसकी करूं? अपने मे क्या है? शरीर, मन, बुद्धि इनमे से कौन महान है और क्या आगे इनसे भी कोई महान है? सोचते-सोचते वह इस नतीजे पर पहुँचा कि मेरे अन्दर बसने वाली शक्ति आत्मा ही सबसे महान है और वही मेरा सच्चा स्वरूप है।

बहुत भटकने और संसार के अनुभव लेने के पश्चात् ही हमे यह अनुभूति होती है कि जिस सुख शाति की हम खोज कर रहे है उसका स्रोत तो हमारे अन्दर ही विद्यमान है। इसके लिये विचार की आवश्यकता है और ससार की छोटी-छोटी घटनाओ से हमे बराबर विचार के लिये सामग्री मिलती रहती है।

३१—*विवेकहीन को ही मूर्ख कहते हैं*

चार यात्री घर से निकले। रास्ते में पानी की प्यास लगी। चार मे से एक यात्री पानी ढूँढता हुआ किसी गृहस्थ के घर पहुँचा। घर की स्त्री ने द्वार खोला और पूछा, "तुम कौन हो?" यात्री ने कहा—"मुसाफिर।" स्त्री ने कहा, "मुसाफिर तो सिर्फ दो है, तुम तीसरे कहां से आये?" यात्री को कुछ उत्तर नही सूझ पड़ा और वह हताश होकर लौट गया। इसी प्रकार दूसरा यात्री वहां पानी ढूँढता हुआ आया और कौन हो ऐसा पूछने पर बोला "मै गरीब हूँ।" स्त्री ने कहा, "गरीब तो सिर्फ

दो है तुम तीसरे कहाँ से आये ?" वह यात्री भी कुछ उत्तर नही दे सका। तीसरे यात्री ने अपने को वलवान वताया और उस स्त्री ने वैसा ही उत्तर उसे भी दिया। चौथे ने अपने को मूर्ख बताया और स्त्री ने उसी प्रकार का उत्तर दिया कि मूर्ख तो केवल दो हैं, तुम तीसरे कहाँ से आये ? इस प्रकार वह भी पानी नही पी सका। अब तो उन चारों को बडी जिज्ञासा हुई और वे उस स्त्री के पास आकर बोले, "अच्छा आपने पानी तो नही पिलाया परन्तु कृपा करके आपके प्रश्नों का उत्तर आप ही बताइये।" स्त्री ने कहा, "ठीक है, आप सब संध्या को ८ वजे आइये मै इन प्रश्नों का उत्तर वताऊँगी।" संध्या को ८ वजे चारों उस स्त्री के घर पहुँचे। उन्होंने घर के अन्दर पैर रखा ही था कि इतने में उस स्त्री का पति आ गया। सहसा चार अपरिचितों को अपने घर में देखकर वह व्यक्ति 'पुलिस-पुलिस' चिल्ला पड़ा। पुलिस तुरन्त आकर उन चारो को राजा के पास पकड़ ले गई और राजा ने उन्हें तत्काल फाँसी की सजा दे दी। चारों को फाँसी पर चढ़ाने के पूर्व उनसे उनकी अन्तिम इच्छा पूछी गई। चारों ने कहा, "उस स्त्री को वुला दीजिये, हमे अभी भी उसके प्रश्नों का उत्तर जानने की जिज्ञासा है।" स्त्री को बुलवाया गया। राजा की उपस्थिति मे स्त्री ने वताया, "मुसाफिर दो है सूर्य और चन्द्र जो रात-दिन चलते-फिरते रहते हैं। गरीव दो है कन्या और बैल जिनको जैसे रखो वैसे ही खुश रहते है और परिश्रम करते है। दो वलवान अन्न और जल हैं जो अनन्त शक्तिशाली को भी जहाँ तहाँ खेंच कर ले जाते हैं। दो मूर्ख है विवेकहीन गृहस्थ और विवेकहीन राजा। ये दो यहाँ मौजूद है। एक मेरे पति जिन्होने विना पूछताछ किये केवल देखकर ही 'पुलिस-पुलिस' चिल्ला दिया और चारों को पकड़वा

दिया। दूसरे है ये राजा जिन्होंने मामले की खोजबीन किये वगैर तुरन्त तुम्हे बड़ी से बड़ी सजा फाँसी की सुनादी। इसलिये मनुष्य का सर्वोत्तम गुण है विवेकी बनना। विवेकहीन मूर्ख होता है।" राजा यह सब सुन रहा था। उसने ग्रादेश देकर सबको छुड़वा दिया।

जीवन में पग-पग पर विवेक की ग्रावश्यकता होती है ऐसा ग्रनुभव किसका नही है ?

३२—ईश्वर ही कर्त्ता

गुरुजी ने कक्षा में कहा, "एक मात्र ईश्वर ही है। उसके ग्रागे हमारी एक भी नही चलती।" एक विद्यार्थी बोला, "ऐसे मैं ग्राप की बात मानने को तैयार नही हूँ, मैं इसकी स्वयं परीक्षा करूँगा। देखता हूँ मेरी इच्छा के विरुद्ध कौन क्या कर सकता है ?" दूसरे दिन उसने पाठशाला से छुट्टी ली ग्रौर प्रण किया कि २४ घण्टे कुछ न खाऊँगा। कोई कुछ खाने को मजबूर न कर दे इससे वह शहर से बाहर एकान्त स्थान मे एक पेड़ पर जाकर बैठ गया। बहुत देर वहां बैठा रहा। कुछ समय पश्चात उस पेड के नजदीक एक स्त्री ग्राई। कुछ समय पूर्व उसका इकलौता बच्चा खो गया था। बच्चे के मिल जाने पर उसने इसी वृक्ष के वन-देवता को मिठाई चढाने की मानता मान रखी थी। ग्रत: बच्चा मिल गया, फलस्वरूप वह पांच सेर मिठाई उस वृक्ष के नीचे रख कर चली गई। विद्यार्थी यह सब ऊपर बैठा देख रहा था। भूख बहुत लगने से उसका मन तो बहुत हुग्रा कि चुपचाप नीचे उतरकर मिठाई खा लूँ, परन्तु ग्रपनी प्रतिज्ञा भग होने के डर से जैसे तैसे ग्रपने को रोककर बैठा रहा। सध्या का समय हुग्रा, ग्रन्धकार बढ़ने लगा। ग्रचानक

उधर से एक डाकुओं का दल आया। जब दल पेड़ के पास से निकला तब उनकी नजर पेड़ के नीचे रखी मिठाई पर पड़ी और वे वरबस ही वहाँ रुक गये। सोचने लगे—इतनी मिठाई यहाँ कैसे आई। एक ने कहा, "इसमे कही विष न हो।" डाकू सशक तो होते ही है, मिठाई बिना परीक्षा किये यों ही कैसे खाये। चारों ओर दृष्टि डाली तो पेड के ऊपर गई और ये छिपे हुए विद्यार्थी दीख गये। डाकुओं ने कहा, "इस मिठाई को खाओ।" विद्यार्थी ने बहुत आना-कानी की, उसने व्रत रख रखा है, वह कुछ नही खायेगा इत्यादि वहुत से वहाते वनाये, परन्तु डाकुओं ने एक न मानी, बल्कि उनकी शका और दृढ़ हो गयी कि जब यह मिठाई जैसी स्वादिष्ट वस्तु खाने से इन्कार कर रहा है तो अवश्य ही मिठाई में विष मिला होगा। लड़के की एक न चली और उसे जबरदस्ती मिठाई खानी पड़ी।

दूसरे दिन कक्षा मे गुरुजी ने पूछा, 'कहो कैसा रहा ?" "जी मैने व्रत की ठानी थी, परन्तु मै अपना निश्चय पूरा कर नही सका। ईश्वर ने केवल खिलाया ही नही, डडे मार-मार कर खिलाया।" विद्यार्थी ने उत्तर दिया।

यह मनुष्य का मिथ्या अहंकार ही है कि वह जो कुछ ठान लेगा वह ईश्वर कृपा के विना अवश्य पूरा कर लेगा।

३३—*जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि*

हमारे मन का प्रतिविम्व ही हमें वाहर दिखाई पड़ता है। जैसी हमारी दृष्टि होगी संसार भी हमें वैसा ही दिखाई पड़ेगा। इस सम्वन्ध में एक मधुर कथा आती है। समर्थ रामदास

रामायण लिखते और शिष्यों को पढकर सुनाते जाते थे। हनुमानजी भी गुप्त रूप से उसे सुनने के लिये आकर बैठते थे। रामदासजी ने लिखाया, "हनुमान अशोक वन मे गये वहाँ उन्होने सफेद फूल देखे।" ऐसा सुनते ही वहाँ झट हनुमानजी प्रकट हो गये और बोले, मैंने सफेद फूल नही देखे लाल देखे थे। तुमने गलत लिखा है उसे सुधार लो।" समर्थ ने कहा, "मैंने ठीक लिखा है आपने सफेद फूल ही देखे थे, मेरी वाणी से असत्य बात नही निकल सकती" हनुमानजी ने कहा, "यह खूब रही मैं स्वतः ही वहाँ गया और मैं ही झूठा।" अन्त में झगड़ा श्री राम के पास पहुँचा। उन्होंने कहा, "तुम दोनो ही ठीक कह रहे हो। फूल तो सफेद ही थे परन्तु उस समय हनुमान की आँखे क्रोध से लाल हो रही थी इसलिये वे शुभ्र फूल भी उन्हे लाल दिखाई दिये।"

३४—*पैसा पैसे को खींचता है*

एक गरीब धनवान बनना चाहता था। उसने सुन रखा था कि पैसा पैसे को खीच लेता है। जैसे तैसे उसने बड़ी श्रद्धा के साथ एक रुपया जमा किया। पास ही गांव के एक धनवान के पास रुपये से भरी एक खुली तिजोरी नजर आई। वह उसके पास जाकर बैठ गया और अपनी जेब से रुपया निकाल कर अपनी अंगुलियो के बीच दबाकर उन रुपयो की राशि पर अपना रुपया फिराने लगा। फिराता रहा कि कही कोई थोड़ा धन खिचकर उसके पास आ जाये, परन्तु बहुत देर प्रयत्न करने पर भी परिणाम कुछ भी नही निकला। फिर भी वह अपने विश्वास पर अडिग रहा और पूर्ण धैर्य के साथ उसने अपनी क्रिया जारी रखी। ऐसा करते करते किसी एक क्षण बे-परवाह हो जाने से वह रुपया उसके हाथ से छूट कर नीचे रखी रुपयो

की राशि में जा पड़ा। इस प्रकार आखिर सिद्ध हो गया कि रुपया रुपये को खींचता है, यद्यपि फल जैसा गरीब ने चाहा उससे उल्टा ही हुआ।

सच है भाग्य के आगे किसका जोर चलता है।

३५—*प्रत्येक की कमजोरी अलग-अलग*

एक बार दानव, मानव और देव ब्रह्माजी के पास उपदेश लेने के लिये पहुँचे।

पहले दानव पहुँचे, तो ब्रह्माजी ने 'द' कहकर एक ही अक्षर में उपदेश दिया।

जब मानव ब्रह्माजी के पास पहुँचे, तब भी उन्होंने केवल 'द' कहकर ही उन्हें उपदेश दिया।

देवो को भी ब्रह्माजी ने उसी एक अक्षर 'द' से उपदेश दिया।

अब तीनों चिन्तन करने लगे। सभी अपनी-अपनी कमज़ोरियां जानते थे। दानव ने सोचा, हम हिंसा बहुत करते हैं अतः हमें दया करना सीखना चाहिये। मानव ने सोचा हमारे में लोभ बहुत है। हमारा कल्याण इसी मे है कि हम दान किया करे। देव ने सोचा हमारे में भोग-वृत्ति बहुत है अतः हमें दमन करना सीखना चाहिये।

इसी प्रकार हमारे में से प्रत्येक को प्रतिदिन चिन्तन करके अपने-अपने विशेष दोषों को दूर कर गुणों को ग्रहण करना चाहिये। ऐसा न सोचें कि हमें उपदेश देने वाले ब्रह्माजी कहाँ मिलेंगे। ब्रह्माजी के रूप मे अन्तरयामी सलाहकार हमारे अन्दर सदा मौजूद ही हैं। आवश्यकता है केवल उनकी शरण में जाकर पूछने की।

३६—चैतन्य का त्याग

एक बार की बात है कि चैतन्य महाप्रभु नाव पर बैठे हुए गंगा पार जा रहे थे। उसी नाव में उनके बचपन के मित्र रघुनाथ पंडित भी सवार थे।

उन्ही दिनों श्री चैतन्य ने न्याय-दर्शन पर एक उच्च कोटि का ग्रन्थ लिखा था। नाव मे बैठे-बैठे ही श्री चैतन्य उस ग्रन्थ के कुछ अश अपने मित्र रघुनाथ पंडित को सुनाने लगे। रघुनाथ पडित ज्यो-ज्यों सुनते गये, त्यो-त्यो उदास होते गये। श्री चैतन्य को बडा आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा था कि पडितजी ग्रन्थ को सराहेंगे और प्रसन्न होगे। पर इसके विपरीत पंडितजी ने तो मुँह ही फेर लिया और अश्रुपात करने लगे। चैतन्य से न रहा गया। पडितजी से उनकी उदासी का कारण पूछा। पडितजी "कुछ नही—कुछ नही" कहते हुए बहुत देर तक टालते रहे परन्तु श्री चैतन्य के आग्रह ने उन्हे कारण बताने पर बाध्य कर दिया। पंडितजी बोले, "भाई निमाई, बात यह है कि मेरे इतने वर्षों की तपस्या ही नष्ट हो गई। बहुत परिश्रम करके मैंने न्याय-दर्शन पर एक ग्रन्थ लिखा है। मैंने सोचा था, पडितों मे इस ग्रन्थ का बडा आदर होगा। वह अमर होगा और मुझे बडा यश प्राप्त होगा। आज आपने अपने ग्रन्थ मे से जो पढकर सुनाया तो मुझे लगा कि आपके इस ग्रन्थ के सामने मेरा ग्रन्थ अत्यन्त तुच्छ है और इसे तुलना मे कुछ भी सम्मान प्राप्त नही होग, इसी से मैं दुखी हू और यही मेरे रोने का कारण है।"

श्री चैतन्य ने कहा, "भाई, क्या इतने के लिये ही तुम रो रहे हो? मुझे आपने पहले ही क्यो नही बताया? लो मेरे इस ग्रन्थ को तो अभी गंगा के हवाले कर देता हूं।" और इतना

कहकर चैतन्य ने अपना वह अमूल्य ग्रन्थ फाड़कर गंगा में बहा दिया।

इस कथा से हमें सन्त की अपार करुणा का पता चलता है। कहा भी है, "संत हृदय नवनीत समाना।" परन्तु साथ ही हमें इस कथा से यह भी सीखना है कि किसी को भी स्वार्थवश अथवा मोहवश अपनेपन को मन में इतना अधिक स्थान नही देना चाहिये जिससे ऐसी हानि हो जो हमेशा के लिये विश्व को एक महान उपलब्धि से वंचित कर दे। कौन कह सकता है, चैतन्य का ग्रन्थ नष्ट हो जाने से पडित समाज को कितनी बड़ी हानि उठानी पड़ी ?

३७—*पाप से बचने का उपाय*

एक बार एक सज्जन ने सन्त एकनाथ महाराज से पूछा, "महाराज ! बतलाइये, क्या कारण है कि आपका जीवन इतना सीधा-सादा सरस है, आनन्द से रहते है, कोई टटा बखेड़ा नही, कोई चिन्ता नही, सब समय एक ही मौज मे रहते है किसी से झगड़ा नही। आपको कभी बीमार होते नही देखा और दूसरी ओर हम है कि सदा हमें चिन्ता, रोग और दु:ख लगे रहते है। इसका रहस्य क्या है ?"

एकनाथ ने उत्तर दिया, "अजी मेरी बात अभी छोड़ो। मुझे तुम्हारे सम्बन्ध में एक बात मालूम हुई है और वह तुम्हे कहना चाहता हूं कि तुम्हारी आज से ७ दिन बाद मृत्यु होने वाली है।" सुनकर वे सज्जन तो दंग ही रह गये। एकनाथ महाराज झूठ तो कह नही सकते। अब क्या किया जाये। वे सज्जन भागे-भागे घर गये। जीवन के अन्त होने में १६८ घण्टे शेष रह गये थे जिसको जो देना था दिया, जो कहना था कहा।

इस प्रकार सबसे निवृत्त होकर चैन से वह शैय्या पर लेट गये और सतत भगवद् स्मरण करने लगे। दिन बीतने पर एकनाथ महाराज उन सज्जन के घर गये। सज्जन ने उठकर प्रणाम किया। एकनाथ ने उन्हे आशीर्वाद दिया और पूछा, "कहो इन छः दिनों में आपसे कितना पाप हुआ।" सज्जन ने कहा, "महाराज पाप करने की फुर्सत ही कहाँ मिली, बराबर मृत्यु जो सिर पर सवार थी।"

"तो आपको अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया न कि मेरा जीवन इतना निष्पाप क्यों है? यदि मृत्यु का निरन्तर स्मरण बना रहे तो क्या पाप बन पड़ेगा?" एकनाथ महाराज ने कहा।

कहा भी है:—

"दो बातन को भूलो नहीं जो चाहो कल्याण।
नारायण एक मौत को दूजे श्री भगवान।।

३८—*काम में अपूर्व बल*

गुरु व्यास ने अपने शिष्य जैमिनी को काम का पराक्रम बताते हुए कहा कि काम मे दस हजार हाथियो का बल है। जैमिनी को विश्वास नही हुआ। वे बोले, "महाराज! उसमे तो एक बकरी का बल भी नही है।"

एक बार व्यासजी को कार्यवश बाहर जाना था। जैमिनी से बोले, "देखो, इस निर्जन स्थान मे तुम अकेले ही हो, सावधानी से रहना। आश्रम का द्वार यकायक किसी के लिये खोल न देना। रात्रि मे विशेष ध्यान रखना।" ऐसा कहकर व्यासजी चले गये।

थोड़े दिनों पश्चात् एक दिन रात्रि में बहुत आँधी चली, घनघोर वर्षा हुई। ऐसे समय में किसी ने आश्रम का दरवाजा खटखटाया। जैमिनी अन्दर ही से बोले, "कौन है?" दरवाजे पर एक सुन्दर युवती थी। बड़ी गिड़गिडाहट व दुःख के स्वर मे उसने कहा, "महाराज, मैं बिल्कुल भीग गई हूँ। वर्षा और आँधी के कारण आगे जाने में बिल्कुल असमर्थ हूँ। कृपा करके आज की रात्रि भर के लिये मुझे स्थान दे दीजिये। सबेरा होते ही मैं यहां से चली जाऊँगी।" जैमिनी को अपने गुरु की बात याद थी। उन्होने उस युवती को आश्रय देने से इन्कार कर दिया। वह युवती और भी कोमल स्वर में जैमिनी से प्रार्थना करने लगी, "मुझ असहास पर दया करे, मै ऐसी रात्रि में कहाँ जाऊँगी?" आखिर जैमिनी उसकी कठिनाई, रूप, आयु देखकर एक रात्रि आश्रम मे ठहराने की बात मान गये। उसे एक कमरा बता दिया और कहा, "इसमे जाकर सो रहो, अन्दर से कमरा अच्छी तरह बन्द कर लो, यहाँ लुटेरे, जंगली पशु आदि बहुत फिरते हैं, अतः किसी भी हालत में कमरे का दरवाजा न खोलना।"

जैमिनी दूसरे कमरे में चले गये। एक आसन बिछाया और ध्यान करने बैठ गये। परन्तु यह क्या? ध्यान जम ही नही रहा था। उसी युवती का चित्र आँखो के सामने घूमने लगा। ईश्वर का ध्यान न होकर आज उस स्त्री का ध्यान होने लगा। मन पर बहुत नियन्त्रण रखना चाहा, परन्तु सारा प्रयत्न व्यर्थ! आखिर जब न रहा गया तो वे उठे और जाकर युवती के कमरे को खटखटाया। परन्तु उन्हीं के आदेशानुसार उसने भय से कमरा नही खोला। आखिर जिस किसी तरह से भी हो जैमिनी

ने उस बन्द कमरे में प्रवेश किया और अपनी वासना उस युवती से कही। युवती ने उन्हे अपने पास बुलाया। परन्तु यह क्या ? पास आने पर उनके एक जोर का थप्पड लगाया। थप्पड खाते ही जैमिनी को होश आया तो देखते हैं सामने व्यासजी खड़े हैं। उन्हें देखकर जैमिनी बहुत ही लज्जित हुए और बोले, "महाराज, मै स्वीकार करता हूं। काम मे दस हजार हाथियों का नही, दस लाख हाथियों का बल होता है।"

काम किसे बावला नही बना देता। काम के पूरा न होने से क्रोध की उत्पत्ति होती है। और काम के पूरा हो जाने से लोभ की इसलिये सबसे बडी बात है काम के आवेग को रोकना। काम पर विजय प्राप्त करना दुर्लभ एवं कठिन अवश्य है परन्तु यदि इन्द्रियो को सही मार्ग पर रखे, कान से दूषित बाते न सुने, नेत्रो से विषय भडकाने वाली बाते न देखे, अच्छा साहित्य पढें, सज्जनों की संगति करे तो काम पर विजय प्राप्त करना सहज हो जाता है।

३९—स्वार्थी संसार

एक सेठ था। जवानी काल मे बहुत धन कमाया था। वृद्धावस्था मे इच्छा हुई कि अब कुछ आराम करूँ। वृद्ध के पांच लडके थे और पांच लाख रुपये। उसने सोचा कि क्यों न धन इन्हें देकर निश्चिन्त होकर रहूं ? पांच मिलकर भी क्या मेरी अकेले की सेवा नही करेंगे ? ऐसा सोचकर उसने प्रत्येक लड़के को एक-एक लाख रुपया दिया। लड़को ने भी आश्वासन दिया कि भला यह हो सकता है कि हम आपकी सेवा न करें।

कुछ दिन तक तो ठीक चलता रहा। बूढा मकान के ऊपर के कमरे मे जाकर रहने लगा। केवल भोजन करने के लिए ही

नीचे आता। बारी वारी से प्रत्येक लड़के के पास भोजन करता। इधर वहुएँ श्वसुर से पर्दा करती थी। उन्हे श्वसुर का प्रतिदिन भोजन के लिए आकर इतनी देर वैठना धीरे-धीरे अखरने लगा। उनको अपनी स्वतन्त्रता मे बाधा लगने लगी। पांचों भाइयों ने आपस में सलाह की कि क्यों न बूढ़े का भोजन वारी-वारी से उनके पास ऊपर कमरे मे ही भेज दिया करे। इस प्रकार भोजन अब ऊपर कोठरी में ही जाने लगा।

परन्तु अब तक भूलचूक होने लगी। वहुएँ कभी-कभी अपने भोजन कराने की वारी भूलने लगीं। और ऐसे दिन वृद्ध को विना भोजन ही रह जाना पड़ता। धीरे-धीरे वहुओ की लापरवाही बढती गई और इस प्रकार वृद्ध को कभी-कभी एक-एक दो-दो दिन भोजन बिना रहना पड जाता। जो भोजन मिलता वह भी रूखा-सूखा एवं ठण्डा होता। वृद्ध चुपचाप यह सहन करता।

एक दिन सेठ के पूर्व परिचित महात्मा १५ वर्ष वाद सेठ से मिलने आये। उन्हे देखते ही सेठ रोने लगे, वोले, "मेरी वड़ी दुर्दशा हो गई है और मैं वहुत दुःखी हूँ।" महात्मा ने उसे कान में कुछ कहा और वे चले गये।

सेठ के कमरे में एक पुराना वक्स था। उसमे सेठ ने इधर उधर से गुप्त रूप से इकट्ठी करके भारी-भारी ईंटे व मलवा भर लिया और उस पर ताला लगा दिया। लड़कों से कहा, "मैं कहां सुखी नही हूं। गंगा के तीर पर जाकर रहूँगा।" लड़कों ने पिता की जाने की तैयारी देखी। साथ ही ताला लगा वक्स देखा। मौका पाकर उठाकर देखा, वहुत भारी था। अरे! इस वृद्ध के पास तो अभी वहुत भारी माल है। सव लड़के नम्र हो गये,

बोले, "पिताजी हमारे पिछले अपराधों को क्षमा करें। आगे से हमसे कोई त्रुटि नही होगी। आपके कमरे में यह घण्टी लगा देते है। जब कभी आपको हमारी सेवा की आवश्यकता हो आप घण्टी बजा दिया करें, हमारे में से कोई न कोई तुरन्त आपके पास उपस्थित हो जाया करेगा।"

अब तो वृद्ध की बढिया सेवा होने लगी। भोजन स्वादिष्ट, सरस, गर्म, और वह भी समय पर मिलने लगा। दूध फल भी भेजे जाने लगे और इस प्रकार वृद्ध के दिन सुखपूर्वक निकलने लगे।

कुछ वर्ष बाद वृद्ध रोगग्रस्त हो गया। लडको ने मन लगाकर सेवा की और दवा-दारू का प्रबन्ध किया, परन्तु वृद्ध की आयु समाप्त हो चुकी थी और उसकी मृत्यु हो गयी।

लडकों मे सब्र कहाँ था। दाह-कार्य से पूर्व ही बड़ी उतावली से बकसा खोला। खोलकर जो कुछ देखा उससे उनके सब कुछ समझ मे आ गया।

धन का लोभ किसे पतन की ओर नही ले जाता। जब हम हमारे पूज्यजनों से ही हम ऊब जाते है और प्रेम के स्थान पर उनसे नफरत करने लगते हैं तो दूसरो की तो बात ही क्या।

४०—जहां मन वहां हम

दो मित्र थे। इच्छा हुई कि थोडा घूम-फिर आवें। रास्ते मे जा रहे थे कि एक ओर उन्होने भागवत कथा होती देखी। उनमे से एक मित्र बोला, "भाई मेरी तो इच्छा है कि थोड़ी देर यही रुककर क्यों न हम भगवान की कथा सुने।" दूसरा मित्र

बोला, "अरे इस कथा में क्या पड़ा है न जाने पण्डित क्या अलाय-वलाय बक रहा है। मैं तो उस वैश्या के घर जाऊँगा और आमोद-प्रमोद करूँगा।" पहले मित्र ने कहा, "तो आप जाइये।" और ऐसा कहकर वह पंडितजी की कथा सुनने बैठ गया। दूसरा मित्र वैश्यालय पहुंचा। आमोद-प्रमोद में उसने अपने मन को बहलाने की कोशिश की, परन्तु जैसे तैसे भी हो उसे आशातीत आनन्द नही आया। तब तो वह सोचने लगा, "अरे मैं कैसा मूर्ख हूं, कहाँ आकर फँस गया! मेरा मित्र कितना बुद्धिमान है, भगवान की कथा का वह कितना आनन्द ले रहा है।"

उधर उस पहले मित्र को भी हरिकथा में रस नही मिला। वह सोचने लगा, "अरे यह पण्डित न जाने क्या क्या अंडबड बोल रहा है। मेरी कुछ समझ मे नही आता। मैं भी कैसा मूर्ख हूँ जो अपने मित्र के साथ न जाकर यही बैठ गया। वह मित्र कैसे-कैसे आनन्द ले रहा होगा।"

अक्समात् उसी समय दोनों की मृत्यु हो गई। जो मित्र वैश्यालय पहुँचा था उसे यम दूत स्वर्ग ले गये और जो मित्र हरिकथा सुनने बैठा था वह नरक का भागी बना।

वास्तविक जीवन हमारे अन्त:करण पर निर्भर है। एक ओर बाहर से हम देखने में अच्छा काम कर रहे हों परन्तु मन में मलिन विचार हो तो उस बाहरी क्रिया का मूल्य बहुत अल्प है; दूसरी ओर किसी पूर्व संचित दुर्बलतावश हम एक अवांछनीय काम मे प्रवृत्त हो गये है, यद्यपि हमारे अन्त:करण से उसके प्रति घृणा है तो ऐसा कर्म भी उत्तम फल देने वाला बन सकता है। जहाँ हमारा मन है वास्तव में हम वही हैं।

४१—पहले मन-शुद्धि हो

किसी समय एक गांव मे पद्मलोचन नाम का एक व्यक्ति रहता था। गाँव मे वह पोदो के नाम से पुकारा जाता था। उसी गाव मे एक जीर्ण-शीर्ण मन्दिर था। वहुत दिनो से उसकी सफाई नही हुई थी, ढेर कूड़ा-कर्कट जमा हो गया था। कही-कही झाडियाँ और घास तक निकल आई थी। उस मन्दिर मे प्रतिमा भी नही थी। एक शाम को यकायक उस मन्दिर से शख और घण्टे की ध्वनि गाव के लोगों ने सुनी। उन्हे आश्चर्य हुआ और उत्सुकतापूर्वक मन्दिर की ओर दौड़े हुए आये। उन्होने सोचा, मालूम होता है किसी भक्त ने मन्दिर का जीर्णोद्धार किया है। मन्दिर के वाहर एकत्रित होकर वे शंख घटे की ध्वनि सुनने लगे। उनमे एक अधिक उत्सुक व्यक्ति ने आगे वढकर मन्दिर मे झाँका तो आश्चर्य से उसने देखा कि मन्दिर के अन्दर तो वही पोदो शख और घटे की ध्वनि कर रहा है। सारे मन्दिर मे पहले की ही भाति गन्दगी छाई हुई है और मन्दिर मे मूर्ति भी नहीं है। तव तो लोगो ने पुकार कर कहा, "अरे पोदो! तूने व्यर्थ मे ही हम सवको हैरान किया। तूने न तो मन्दिर की सफाई कराई है और न ही मूर्ति की प्रतिष्ठा की है। अरे, इस मन्दिर मे तो ग्यारह चमगादडों का वास है जो इसे रात दिन गन्दा करते है। केवल शोर मचाने से क्या होगा।"

यदि हमे हमारे मन मन्दिर मे भगवान को विठाना है अर्थात् हमारे अन्दर सोई शक्ति को जाग्रत करना है तो केवल शोर मचाने से क्या होगा? जव मन की गन्दगी दूर होगी तो ईश्वर स्वय वहा आकर वैठ जायेगे। उपरोक्त ग्यारह गीदड़ हमारी ग्यारह इन्द्रियां है—पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियां

और एक मन—ये सदा हमारे मन मन्दिर को अपवित्र करते रहते है। पहले इन सब को संयम में लाकर मन को शुद्ध करना होगा। फिर तो भगवान वहाँ स्वयं ही विराजमान हो जावेंगे। उससे पहले ही शोर मचाने से, वड़े-वड़े भापण देने से क्या होगा !

४२—*अपरोक्ष ज्ञान आवश्यक*

एक गृहस्थ ने एक गौ पाल रखी थी। अचानक वह एक दिन वीमार हो गई। पशु-चिकित्सक को दिखाने पर उसने वताया कि गौ को आधा पाव घी और एक तोला भर काली मिर्च मिलाकर पिलाया जाय और तीन दिन के पश्चात् उसे खवर दे। गृहस्थ गौ को लेकर घर गया। दूसरे दिन उसने सोचा कि घी दूध से वनता है। चिकित्सक ने गौ को घी पिलाने को कहा है। अतः यदि आज मैं गौ का दूध न निकालूँ तो काम वन जायेगा। केवल काली मिर्च इसे दे देता हूँ। तीन दिन तक उसने गौ को केवल काली मिर्च पिलाई और गौ का दूध निकालना वन्द कर दिया। तीन दिन वीतने पर भी गौ को कुछ भी लाभ नहीं हुआ। उल्टे दूध नही निकालने से वह अधिक अस्वस्थ हो गयी। तव तो वह पुनः चिकित्सक के पास गया। चिकित्सक को जव सारी वात मालूम हुई तव उसने कहा, अरे, गौ ऐसा करने से ठीक नही होगी। अलग से घी लाकर पिलाना होगा।" तव गृहस्थ ने ऐसा ही किया और गौ शीघ्र ही स्वस्थ हो गई। गौ के अन्दर घी परोक्ष रूप में अवश्य मौजूद है परन्तु गौ को औषधि देने के लिये अलग से घी मगाकर उसे देना होगा।

सच्चा ज्ञान वही होता है जो अपरोक्ष अर्थात् प्रत्यक्ष होता है। एक ने वम्वई नगर के वारे में सुना ही सुना है और दूसरे ने उस नगर को जाकर प्रत्यक्ष देखा है। एक ने दूध का नाम सुना ही सुना है और एक ने दूध चखा है। दोनों के ज्ञान में वड़ा अन्तर है। इसी प्रकार हमें ·प्रत्येक अच्छाई वुराई का प्रत्यक्ष

ज्ञान होना चाहिए। ऐसे ही ज्ञान से विवेक का उदय होता है।

४३—माया ने किसको नहीं ठगा

ईश्वर की माया गहन है। जैसे सुदामा ने प्रभु से माया के दर्शन चाहे थे, ऐसे ही एक बार नारद ने भगवान से कहा, "आप एक बार कृपा करके अपनी माया के दर्शन कराइये।" भगवान ने उस समय तो कुछ नही कहा। एक दिन बोले, "नारद मुझे प्यास लगी है। थोडा सा कही से पानी लाकर शीघ्र दो।" यह कहकर भगवान बैठ गये और नारद पानी की तलाश मे निकल पडे।

पानी नजदीक में न मिल सकने के कारण नारदजी को कुछ दूर जाना पडा। वहा एक नदी दिखाई पड़ी। जब नदी के निकट गये तो एक बालिका उनसे अत्यन्त सुन्दर शब्दो मे बात करने लगी। शीघ्र ही, दोनो मे परस्पर प्रेम हो गया। फलस्वरूप नारदजी ने उससे विवाह कर लिया और वे एक गृहस्थ के रूप मे अपना जीवन बिताने लगे। समय जाते देर नही लगती और नारदजी कई बच्चो के पिता बन गये और उनकी गृहस्थी आनन्दपूर्वक चलने लगी। काल की गति सदा एक सी नही होती। कुछ समय पश्चात गाव मे महामारी का प्रकोप हुआ और लोग धडा-धड मरने लगे। नारदजी ने उस स्थान को छोड़ने का निश्चय किया और अपनी स्त्री व बच्चों को साथ लेकर घर से बाहर निकले। ज्योंही वे रास्ते में नदी का पुल पार कर रहे थे कि जोर की बाढ आई और एक-एक करके उनके सभी बच्चे नदी के प्रवाह मे बह गये। अन्त मे उनकी स्त्री भी पानी मे डूब गई। शोक से सन्तप्त होकर नारद नदी के एक किनारे पर बैठ गये और रोने लगे। उसी समय वहां भगवान

प्रकट हुए और बोले, "नारद ! पानी मंगाया वह कहाँ है और तुम रो क्यों रहे हो ?" भगवान पर दृष्टि पड़ते ही नारदजी चौक पड़े । उधर माया का प्रभाव भी जाता रहा और नारदजी की सब कुछ समझ में आ गया । बोले, "हे भगवान ! आपकी माया को नमस्कार है परन्तु अब आगे कभी न दिखाइयेगा ।"

सच है, ईश्वर की माया अत्यन्त गहन है । वह मनुष्य तो क्या ऋषि-मुनि व देवता को भी नचाती रहती है । ऐसे ही सती, गरुडजी, काक भुशुण्डजी आदि के मोह की कथाएँ हमें रामायण में पढने को मिलती हैं । भगवान के एक क्षण मात्र में ही नारदजी के साथ वर्षों की घटनाएँ घट गई थीं ।

४४—श्रद्धा ही मुख्य बात

एक नदी के पास कुछ ग्वालनें रहती थी । वे प्रतिदिन नाव में बैठकर नदी के दूसरी पार नगर में दूध बेचने जाया करती थीं । बेचने के पश्चात् उन्हे लौटने की उतावली तो होती नही थी आराम से जाती थी । एक दिन उन्होने रास्ते में एक स्थान पर हरि कथा होते देखी । वे वहाँ ठहर गयी और भगवान की कथा सुनने लगी । कथा में उन्हे रुचि हुई और प्रतिदिन गाव लौटने से पूर्व थोड़े समय कथा सुनने का उन्होंने नियम बना लिया । एक दिन कथा के प्रसंग मे पंडितजी बोले कि हरि का नाम लेकर मनुष्य अत्यन्त कठिन भवसागर के पार उतर जाता है । ग्वालनों ने यह वाक्य सुना और विचारने लगी । "अरे हम कितनी मूर्ख हैं कि प्रतिदिन गांव से आने-जाने में नाव पर खर्चा करती हैं । भगवान का नाम लेकर जब संसार-सागर पार किया जा सकता है, तो इस छोटी-सी नदी की क्या बात

है।" अब तो वे अगले दिन से भगवान का नाम लेती और सहज पानी पर चलकर दोनो ओर से नदी पार करती। ऐसा वे प्रतिदिन करने लगी। पण्डितजी का बड़ा उपकार मानकर, जिनके कारण उन्हे रोज के नाव के किराये की बचत हो गई थी, उन्होने एक दिन उनसे विनती की कि महाराज एक दिन हमारे घर पधारिये, हम आपकी कुछ सेवा करे। पंडितजी ने जब निमन्त्रण का कारण पूछा तो भोली ग्वालनो ने उन्हे सारी बात बता दी। पंडितजी तो सुनकर हैरान हो गये। उन्हे ग्वालनो की बात पर विश्वास नही हुआ। वे ग्वालनों के साथ नदी पर गये। अब तो शंका की गुंजाइश ही नही थी। वे भोली-भाली अनपढ ग्वालने सचमुच राम का नाम लेकर पानी पर चल रही थी और कह रही थी, "महाराज, हमारे साथ आइये न, देरी का क्या कारण है?" परन्तु वे कैसे आते! फिर भी बहुत हिम्मत कर उन्होने राम का नाम लेकर पानी पर चलने के लिये मन को दृढ किया। साथ ही बोले, "मैं साहस तो करता हूँ, परन्तु यदि पानी मे डूबने लगूँ तो मुझे तुरन्त पकड लेना।" फल वही हुआ जो होना था। भोली-भाली ग्वालनों की सी श्रद्धा तो उनमे थी नहीं उन्हे तो डूबने की आशंका बनी हुई थी फिर वे पार कैसे उतरते।

सच है श्रद्धा के अभाव मे सभी कुछ असम्भव है और श्रद्धा हो तो कुछ भी असम्भव नही है।

४५—सब स्त्रियों में वही एक माता के दर्शन

एक बार किसी ने श्री रामकृष्ण परमहंस से पूछा कि आप अपनी स्त्री के साथ गृहस्थ जीवन क्यों नही बिताते? श्री रामकृष्ण ने उत्तर में कहा:—

एक वार शिवजी के पुत्र कार्तिकेय ने अपनी अगुली के नख से एक बिल्ली को खरोंच दिया। घर जाकर क्या देखते हैं कि ठीक वैसा ही खरोंच का निशान अपनी माता पार्वती के गाल पर पड़ा हुआ है। हैरान होकर पूछने लगे, "माँ, यह तुम्हारे गाल पर निशान कैसा पड़ा है!" जगज्जननी माता पार्वती बोली, "बेटा, यह तुम्हीं ने किया है, यह तुम्हारे नाखून से हुआ है।" "यह क्या कह रही हो मां, मैने तो कभी ऐसे खरोंच का निशान आपको नही डाला।" माता बोली, "तुम भूल कर रहे हो। आज ही सवेरे तो तुमने एक बिल्ली को खरोचा था।" "हाँ, यह तो तुम ठीक कह रही हो मां! मैंने आज सवेरे एक बिल्ली को खरोंचा था, परन्तु आपको यह निशान कैसे लग गया?" माता ने कहा, "मेरे बच्चे, सारे विश्व मे मैं ही व्याप्त हूँ, मेरे से बाहर कुछ भी नही है। जिस किसी प्राणी को जब चोट पहुँचाते हो तो वह मेरे ही लगती है।" कार्तिकेय को यह सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ और उसी समय उन्होने निश्चय किया कि वे कभी विवाह नही करेगे। क्योकि विवाह करे तो किससे, प्रत्येक स्त्री माता का रूप है।

इस प्रकार कार्तिकेय ने प्रत्येक स्त्री में मातृभाव की अनुभूति करके विवाह का विचार छोड दिया। वैसे ही श्रीरामकृष्ण ने कहा, "मैं प्रत्येक स्त्री मे उसी एक जग-माता के दर्शन करता हूँ, तव अपनी स्त्री के साथ गृहस्थ जीवन कैसे बिता सकता हूँ।"

४६—*कठिन समय में ही परीक्षा*

एक वार श्री कृष्ण अपने ग्वाल सखाओं के सहित जमुना में नौका-विहार कर रहे थे। अमावस्या की रात्रि थी। श्री

कृष्ण ने भक्तों की परीक्षा लेनी चाही। यकायक आकाश में बादल घुमड़ आये, वर्षा होने लगी। अंधेरी रात्रि, जमुना का श्याम जल। उधर देखते हैं तो नाव में छेद। सभी अवस्थाएँ विपरीत। बालक घबराये। परन्तु सुदामा अभी भी शान्त भाव से बैठे थे। श्री कृष्ण बोले, "सुदामा क्या कारण है तुम नही घबरा रहे हो! नाव तो अब डूबने वाली है।" "मैं तो आपके मुख को देख रहा हूँ!" सुदामा ने उत्तर दिया। "आप हमेशा की भांति ही शान्त, स्वस्थ व प्रसन्न है। जब आप ही नही घबरा रहे है, तो मैं ही क्यों घबराऊँ? अवश्य ही सारे अनर्थ इकट्ठे हो गये है, परन्तु आपका सहारा तो कही गया ही नही है। जब तक आप कर्णधार है, तब तक हम कैसे डूब सकते है!" शीघ्र ही कृष्ण ने अपनी माया समेट ली।

भगवान मे श्रद्धा और विश्वास के ही कारण सुदामा अत्यन्त विकट स्थिति मे भी अविचल बने रहे जबकि इनके अभाव मे सभी दूसरे मित्र डगमगा गये।

४७—*स्वर्ग भी जाने को कोई तैयार नहीं*

वैकुण्ठ-लोक में स्थान खाली देखकर नारदजी को आश्चर्य हुआ और भगवान से कारण पूछा। भगवान बोले, "क्या करूँ, मैं क्या इसे खाली देखना चाहता हूँ? परन्तु यहा तो कोई विरला ही आना चाहता है।" नारदजी को भगवान के कथन पर विश्वास नही हुआ, क्योंकि भला स्वर्ग मे रहने वालों का सा आनन्द कौन नही चाहता होगा। उन्होने इसकी स्वयं परीक्षा करनी चाही। इस हेतु वे पृथ्वी-लोक पर आये। यहाँ आने पर घूमते-घूमते सर्वप्रथम उनकी भेंट एक नौजवान पार्टी से हुई। नारदजी ने उनसे पूछा, "क्यो भाई, क्या स्वर्ग का आनन्द लेने के लिये आप वहाँ चलना चाहते है?" नौजवान तो एकदम

बिगड़ ही उठे, "वाह ! क्या हम ही मिले हैं। जाइये, ढूँढिये किसी बूढ़े को। वह शायद आपके साथ चला चले।" आगे रास्ते में नारदजी बहुत लोगो से पूछते हुए चले, परन्तु जवाब मे सभी उन्हें खरी-खोटी सुनाते, एक भी उनके साथ स्वर्ग जाने को तैयार नही होता था। आखिर एक वृद्ध दिखाई पडा। नारदजी को पूरा विश्वास था कि वृद्ध तो उनकी बात अवश्य ही मान लेगा। पूछने पर वृद्ध बोला, "नारदजी ! आपका विचार तो उत्तम है, परन्तु थोड़े दिन रुक जाइये, मुझे एक बेटे की शादी अभी करनी शेष है। उसके पश्चात् आपके साथ चला चलूँगा।" शादी भी हो गई और नारदजी ने आकर पुनः उससे वही बात पूछी, परन्तु वृद्ध अभी भी चलने को तैयार नही था। कहने लगा, "नारदजी, आप थोड़े समय और ठहर जाइये। इस पुत्र के बालक हो जाय, उसकी जरा तोतली बोली का आनन्द ले लूँ तब आपके साथ अवश्य चला चलूँगा।" नारदजी ने भी धीरज नही छोड़ा, कुछ समय पश्चात् पुनः उसके पास आये; परन्तु फिर भी वह जाने को तैयार नही था। कहने लगा, "नारदजी, इस छोटे बच्चे को मेरे जाने के बाद कौन खिलायेगा। आपने बहुत सब्र किया है, अभी कृपा करके थोड़ा और रुक जाइये, जरा बच्चा बड़ा हो जाये।"

नारदजी एकदम खाली हाथ भगवान के पास लौटना नही चाहते थे। अतः उनके सामने स्वीकृति के सिवाय कोई चारा नही था। परन्तु इस बार जब वे वृद्ध के घर पहुँचे, तो उन्हे पता लगा कि वृद्ध का देहान्त हो चुका है। योगबल से उन्होंने देखा तो वृद्ध मर कर कुत्ते की योनि मे गया है और उसी अपने पुराने घर की रात-दिन चौकीदारी करता रहता है। नारदजी ने सोचा कि अब तो यह अवश्य मेरे साथ स्वर्ग चलने को तैयार

हो जायेगा। अपने योगबल से उसे वाणी देकर पूछा, तो कुत्ता बोला, "महाराज अभी कैसे चल सकता हूँ! मेरे लडके बड़े मूर्ख हैं। कभी-कभी तो घर के ताले लगाने का भी ध्यान नही रखते। ऐसी हालत मे मैं चौकीदारी न करूँ तो मेरी गाढी कमाई पर पानी ही फिर जायेगा।" नारदजी निराश लौट गये। पुनः आये तो देखा वह कुत्ता मर कर सर्प बनकर उसी घर मे तिजोरी पर जाकर बैठा हुआ है। उसको अपने पुराने अर्जित किये धन की इतनी चिन्ता थी कि अभी भी उसने नारदजी के साथ जाना स्वीकार नही किया।

अगली बार नारदजी आये, तो मालूम हुआ कि वह सर्प मारा जा चुका है और उसके मारने वाले दूसरे कोई नही स्वयं उसी वृद्ध के ही बच्चे थे।

योगबल से नारदजी ने देखा कि वह वृद्ध अब शूकर की योनि मे प्रविष्ट हुआ है और वही नगर के बाहर अपनी शूकरी के साथ खाई मे गन्दगी भक्षण कर जीवन बिताता हुआ आनन्द ले रहा है। शूकर बने वृद्ध से नारदजी ने पूछा, "भाई, निस्सदेह अब तो तुम स्वर्ग चलना चाहोगे।" शूकर बोला, "हाँ महाराज, अब आपके साथ चलने को तैयार हूँ बस एक ही छोटी-सी बात है, मैं शूकरी से पूछ लूँ। वह राजी हो गई तो फिर हम दोनों ही आपके साथ चले चलेंगे।" नारदजी ने सतोष की सास ली, आखिर एक की जगह अब दो उनके साथ जायेंगे। अतः जब शूकर पूछकर आया, तब वे बड़ी उत्सुकता से उसकी ओर देखने लगे। शूकर बोला, "महाराज, हम बिल्कुल तैयार है केवल एक बात बता दीजिये। हमारा रुचिकर भोजन वहा हमे खाने को मिलेगा या नही। "तुम्हारा रुचिकर भोजन क्या है?" नारदजी

ने उत्सुकता से पूछा। "बस यही मल, विष्ठा, आक" शूकर ने उत्तर दिया, "इन चीजों के बगैर हम कही नहीं रह सकते।" नारदजी ने अपना सिर ठोक लिया। बोले, "नहीं भाई, रहने दो तुम्हारा जाना, तुम यही रहो, ये चीजें वहाँ नही मिलती है।"

सच है, संसार के अनेक विषय-भोग छोड़कर उनसे परे की बातों का आनन्द लेने में हमारी रुचि नही।

४८—*जैसे हम वैसी हमारी दुनिया*

एक बार एक साधु समाधि में मग्न एक सड़क के किनारे पड़े थे। उस रास्ते से जाते हुए एक चोर ने उन्हें देखा और सोचा, अवश्य ही यह कोई चोर है। रात्रि भर चोरी करने में लगा रहा होगा और अब थक कर आराम कर रहा है। शीघ्र ही पुलिस इसे पकड़ने आवेगी। मुझे यहाँ से जल्दी ही भाग जाना चाहिये, कही मैं भी इसके साथ न पकड़ा जाऊँ। ऐसा सोचते-सोचते वह भाग खड़ा हुआ।

थोड़ी देर में उधर से एक शराबी निकला। साधु को पड़े देखकर वह बोला, "वाह इतनी पी ली तुमने! तुम से तो मैं ही अच्छा हूँ जो पीने पर भी अपने होश-हवास में हूँ।"

अन्त में उधर से एक साधु गुजरा। उसने भी वहां पड़े हुए साधु को देखा, उसकी अवस्था को पहचाना और श्रद्धा और प्रेम-पूर्वक उसकी सेवा मे लग गया।

हमारे अन्त:करण के विचार ही साकार रूप में बाहर प्रकट होते हैं। जैसे हम है वैसा ही बाहर देखते हैं। चोर को सब चोर और साहूकार को सब साहूकार नजर आते हैं।

४६—अब्राहम और नव आगन्तुक

अब्राहम शाम के समय अपने घर के दरवाजे पर बैठे थे कि कमर से झुका लाठी के सहारे चलता हुआ एक वृद्ध व्यक्ति उनकी नजर पड़ा। अब्राहम उठकर उसके पास तुरन्त ही गये और बोले, "मेरी आपसे प्रार्थना है, अन्दर आइये, हाथ पैर धोकर भोजन कीजिये, रात्रि में विश्राम कीजिये, फिर प्रातःकाल चले जाइयेगा।"

परन्तु वह व्यक्ति बोला, "नही, मैं यही पेड़ के नीचे रात्रि बिताऊँगा।" अब्राहम नही माना। आग्रह और विनय करके उसे घर के अन्दर ले गया और दोनो ने प्रेम-पूर्वक साथ भोजन किया।

भोजन के पश्चात् जब भजन करने का समय हुआ, तब वह व्यक्ति एक ओर बैठ गया। अब्राहम ने देखा तो उसे बहुत बुरा लगा। और जब अब्राहम ने पूछा, तो उस व्यक्ति ने स्पष्ट ही कहा, "मैं ईश्वर की न पूजा करता हूँ और न उनका भजन करता हूँ।"

अब्राहम क्रोध मे आकर उस व्यक्ति पर बरस पड़े और मार-पीटकर उसे भगा दिया।

रात्रि में भगवान ने अब्राहम से पूछा, "अब्राहम, वह आज तुम्हारे द्वार पर आया व्यक्ति कहाँ है?"

"वह आपकी न तो पूजा करता है और न भजन करता है, इसलिये उस व्यक्ति को मैंने पीटकर भगा दिया," अब्राहम ने उत्तर दिया।

भगवान बोले, "उस व्यक्ति की मेरे में मानता न होने पर भी मैंने ६८ वर्ष तक उसका पालन-पोषण किया और उसको

सब सुविधाएँ दी और एक तुम हो कि एक रात्रि भर भी उसे बरदाश्त नहीं कर सके।

अब्राहम ने हाथ जोड़ लिये, "भगवान, क्षमा कीजिये, बड़ी भूल हुई। कृपा कर आप मुझ पर क्रोध न करें, मैं बड़ा पापी हूँ," और अब्राहम भागा-भागा गया और उस व्यक्ति को ढूँढ लाया। फिर तो उसकी तरह-तरह से खातिर की और बहुत सी भेटे देकर उसे सम्मान से विदा किया।

सच है, हमें दूसरों के दोषों पर दृष्टि न डालकर उनके प्रति ऐसी ही सहिष्णुता से काम लेना चाहिये यह विचार कर कि हम कम दोषी नही है और सदा ही भगवान की क्षमा चाहते है।

५८—*सांचोपांजा का न्याय*

दो व्यक्ति, एक लाठी लिये और दूसरा खाली हाथ सांचोपांजा के न्यायालय में उपस्थित हुए। जो खाली हाथ था वह बोला, "हुजूर, कुछ समय पहले मैंने इस व्यक्ति को दस सोने की मोहरें इस शर्त पर उधार दी थी कि वह मेरे मांगने पर उन्हें तुरन्त लौटा देगा। कुछ समय तक उसकी हालत को देखकर मैंने मांगीं नही, परन्तु जब काफी समय हो गया तब एक दिन मैं मांग बैठा। उसके बाद मैं कई बार मांग चुका हूँ। यह व्यक्ति केवल लौटाने से ही इन्कार नही करता है, वह यह भी कहता है कि उसने कभी मेरे से लिया ही नही। मेरे कर्ज का कोई साक्षी भी नही है और न इसने मेरा कर्जा लौटाया है, परन्तु फिर भी यदि हुजूर के सामने वह शपथ-पूर्वक कह दे कि उसने कर्ज नही लिया तो अपना दिया हुआ कर्जा भूल जाऊँगा।"

सांचोपांजा ने उस लाठी लिये हुए व्यक्ति से पूछा, "इसके कर्जे की बावत तुम क्या कहना चाहते हो?" वह बोला, "हुजूर, यह सच है" और ऐसा कहते हुए उस व्यक्ति ने अपनी लाठी दूसरे व्यक्ति को पकड़ा दी मानो वह यह क्रिया सुविधा की दृष्टि से कर रहा हो, "यह सच है कि मैंने इनसे कर्ज लिया परन्तु वह कर्जा मैंने इन्हें, इन्हीं के हाथों लौटा दिया है, परन्तु इन्हें मालूम नहीं है, इसी कारण ये बार-बार मुझ से मांगते रहते हैं।"

सांचोपांजा के पूछने पर पहला व्यक्ति बोला, "हुजूर, मुझे आश्चर्य अवश्य है किन्तु साथ ही इसकी ईमानदारी पर अविश्वास का भी कोई कारण नहीं है। जरूर मेरी ही याददाश्त में भूल रही होगी। अब आगे से मैं कभी इससे अपना कर्ज नहीं मांगूंगा, आप मामले को समाप्त कर दीजिये।"

मामला समाप्त हो गया और वह कर्जदार कहलाने वाला व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से अपनी लाठी अपने हाथ में लेकर वहां से चल दिया। सांचोपांजा गहरे विचार में पड़ गया। कुछ देर के चिन्तन के पश्चात उसने जाते हुए लाठी वाले व्यक्ति को पुनः बुलाया और उससे उसकी लाठी मांगी। लाठी पाकर सांचोपांजा ने उसके दो टुकड़े करवाये। सबने आश्चर्यपूर्वक देखा कि मोहरें उस लकड़ी में छिपी हुई थीं। न्यायालय में उपस्थित होकर उसने अपनी लाठी पहले व्यक्ति को थमाई थी और इसी कारण से उसने यह कहा था कि मैंने अपना कर्जा अपने ही हाथों से इसी व्यक्ति के हाथों में लौटाया है।

उस व्यक्ति का काला मुंह तो हुआ ही सांचोपांजा के न्याय की सर्वत्र प्रशंसा हो गई।

हम एक बुराई करके उसे छिपाने के लिये अपनी सूझ-बूझ से अनेक आश्चर्यजनक बहाने खोज निकालते हैं। ऐसी ईश्वर-दत्त बुद्धि को यदि हम जीवन की अच्छी बातों की ओर मोड़ें तो अपना और दूसरे लोगों का कितना अधिक हित कर सकते हैं ?

५१—*साथ क्या जाता है ?*

एक बार एक राजा ने अपने मंत्री को आज्ञा दी—"कहीं न कहीं से ढूंढ कर मेरे सामने एक महामूर्ख उपस्थित करो।" मंत्री और उसके साथियों ने बहुत तलाश के बाद एक महामूर्ख राजा के सामने हाज़िर किया। राजा ने उस मूर्ख को एक चांदी की छड़ी दी और कहा कि इसे ऐसे व्यक्ति को दो जो तुमसे भी अधिक मूर्ख हो, इस काम के लिये तुम्हें दस हजार रुपये का इनाम दिया जायेगा। महामूर्ख ने बहुत खोज-बीन की, बहुतेरे स्थान ढूंढे, बहुत लोगों के बीच गया परन्तु अपने से अधिक मूर्ख का पता लगाने में सफल नहीं हो सका। निराश होकर वह राजा के पास लौट आया। उस समय राजा किसी रोगवश शैया पर पड़ा था। रोग की औषधि तो बहुत की जा रही थी परन्तु राजा का स्वास्थ्य संभल नहीं रहा था। आखिर चिकित्सकों ने उनके बचने की आशा छोड़ दी। महामूर्ख ने राजा से पूछा, "आप ऐसे क्यों पड़े हैं, आपको क्या हो गया है ?"

राजा : भाई, हम तो अब चलने वाले हैं।
महामूर्ख : आप कहाँ जायेंगे ?
राजा : यह तो मालूम नहीं।
महामूर्ख : कितनी दूर जायेंगे ?
राजा : यह भी नहीं मालूम।
महामूर्ख : लौटकर कब आयेंगे ?

राजा : वहां से लौटते नहीं ।

महामूर्ख : रानी, पुत्रादि को तो संग ले जाओगे ?

राजा : नहीं ।

महामूर्ख : रास्ते के लिये सवारी का प्रवन्ध तो कर ही लिया होगा ।

राजा : नहीं ।

महामूर्ख : रास्ते के लिये खाने-पीने की वस्तु का प्रवन्ध तो अवश्य ही कर लिया होगा ।

राजा : अरे, किस मगजपच्च को यहां ले आये ?

महामूर्ख : वस अधिक आपको दिक नहीं करूंगा । एक दो वातों का उत्तर और दे दीजिये । आप राह खर्च तो साथ ले जा रहे हैं न ?

राजा : नहीं ।

महामूर्ख : आपका शरीर तो साथ ही जावेगा न ?

राजा : नहीं ।

महामूर्ख : रास्ते के लिये किसी मित्र को संगी तो अवश्य आपने वनाया होगा ।

राजा : नहीं ।

महामूर्ख : तव तो यह चांदी की छड़ी आप ही ले लीजिये । मैं इतने दिनों से जिसकी तलाश में था वह अनायास ही मुझे आज मिल गया । और यह कहकर उसने चांदी की छड़ी राजा के हाथ में थमा दी ।

राजा ने भी विचार किया । "कहने को तो यह महामूर्ख कहा जाता है परन्तु इसकी वातें अत्यन्त समझदारों की सी हैं । सचमुच ही जीवन भर मैंने उत्तम कर्म नहीं किये, उत्तम ग्रन्थ

नहीं पढ़े, उत्तम पुरुषों की संगति नहीं की, विषय-भोगों में रत रहा, धर्म में मेरी आस्था नहीं हुई अब अन्त समय क्या साथ लेकर जाऊँगा ! मेरे से बड़ा मूर्ख कौन होगा ?"

हमारे साथ हमारी की हुई अच्छाई ही साथ जाती है। ऐसा अभ्यास करें कि जीवन भर सदाचार में हमारी प्रवृत्ति हो। झूंठ, पाखंड, भ्रष्टाचार से सदा दूर रहें और परोपकार में रत रहें। ऐसा करने से मृत्यु के समय मन विवेक-वैराग्यपूर्ण होगा और हमारी सद्गति निश्चित है।

५२—*पाप का बाप कौन ?*

एक था ब्राह्मण का लड़का। पिता ने उसे काशी विद्या पढ़ने भेजा। १२ वर्ष काशी में विद्या पढ़कर जब वह घर लौटा तो पिता ने एक सुयोग्य कन्या से उसका विवाह कर दिया। कन्या विदूषी तो थी ही, व्यावहारिक ज्ञान भी बहुत रखती थी। वह मनुष्य की कमजोरी को तत्काल पहचान लेती थी। ऐसे ही उसने पति में जो कुछ देखा तो एक दिन बोली, "बताइये, पाप का बाप कौन है ?" लड़के ने पढ़ी हुई पुस्तकें अपने मस्तिष्क में दौड़ाईं पर लड़की के प्रश्न का उत्तर उसे नहीं सूझा। आखिर बोला, "मैंने यह चीज़ तो पढ़ी ही नहीं।" "तो उसके बिना आपकी शिक्षा अधूरी है, आप पुनः काशी जाइये और पढ़कर आइये", लड़की ने आग्रहपूर्वक कहा। आखिर वह लड़का फिर काशी के लिये रवाना हुआ। चलते-चलते अनजाने रास्ते में वह जहां पर भोजन का प्रबन्ध करने ठहरा तो वहां एक वैश्या का घर था, जिसका पता थोड़ी देर में उसे चल गया। वैश्या ने बात ही बात में लड़के से उसके काशी जाने का प्रयोजन मालूम कर लिया। वैश्या हल्का पेशा करने पर भी गुणवान थी। उसे उस लड़के

पर बड़ी दया आई। बोली, "आइये, भोजन करिये।" "तुम्हारे यहां तो भोजन नहीं करूंगा, शास्त्र में वर्जित है।" "अच्छा तो तुम्हें सूखा सामान दे देती हूं, स्वयं ही भोजन बना लो, ऊपर से दक्षिणा में अशर्फी दूंगी।" लड़का अशर्फी की बात सुनकर फिसल गया और सूखा सामान लेकर भोजन बनाने को तैयार हो गया। भोजन बन जाने पर वैश्या बोली, "आप पहला ग्रास मेरे हाथ से लीजिये।" "यह तो मैं कदापि नहीं करूंगा", लड़के ने कहा। वैश्या ने कहा, "मेरी बात आप मान लेंगे तो ५ अशर्फी और दूंगी।" अब तो लड़का सोच में पड़ गया। "क्या हुआ यदि इसके हाथ से एक ग्रास खा ही लूं, अच्छी तरह कुल्ला कर लूंगा।" और वह राजी हो गया। वैश्या ने अपने हाथ से एक ग्रास उठाया। उधर वह लड़का अपना मुख खोलकर ग्रास अपने मुंह में लेने ही वाला था कि वैश्या ने एक जोर का थप्पड़ लड़के के लगाया। लड़का भौंचक्का रह गया। पहली प्रेरणा तो उसे हुई कि वह भी वैश्या पर हाथ उठाये, परन्तु कुछ सोचकर रुक गया और वैश्या से उसने इस अनोखे व्यवहार का कारण पूछा। वैश्या बोली, "मैंने तुम्हें आगे के कष्ट से बचाने के लिये ही थप्पड़ लगाया है। मैं नहीं चाहती थी कि तुम इतने वर्ष काशी पढ़कर आये और पुनः वहां जाकर पढ़ने में लगो। जिस प्रश्न को लेकर तुम्हारी स्त्री ने काशी जाने को कहा है उसका उत्तर मैंने तुम्हें यहीं दे दिया और अब तुम खुशी से घर लौट सकते हो।"

"परन्तु मैं तो कुछ समझ ही नहीं पाया हूं।" लड़का बोला।

वैश्या बोली—"बात स्पष्ट है, पाप का बाप लोभ है। अशर्फी के बढ़ते हुए लोभ में आकर तुम अपनी इच्छा के विरुद्ध

एक के वाद दूसरा पाप करने को तैयार होते चले गये और न जाने इसी प्रकार आगे और लोभ देकर मैं तुमसे क्या-क्या न करवा लेती।"

लड़के ने वैश्या का गुरु के समान सम्मान किया और आगे काशी जाने के वदले वहीं से घर लौट गया। वहां उसकी स्त्री भी उसके उत्तर से संतुष्ट हो गई।

गीता में श्रीकृष्ण ने नरक के जो तीन द्वार वताये हैं, उनमें एक है लोभ, जो मनुष्य को अनेक पापों में प्रवृत्त करता है।

५३—*शब्दों का जादू*

एक राजा था। राजा के एक पुत्र तथा एक पुत्री थी। व्यसनी होने के कारण राजा अपने मौज शौक में ही डूबा रहता था। उसको न तो अपने राज्य के प्रति कर्त्तव्य की चिन्ता थी, और न पुत्र-पुत्री की। राजा की आयु काफी ढल चुकी थी परन्तु पुत्र को राज्य सौंप कर स्वयं अवकाश लेने का उनका कोई विचार नहीं था, उधर पुत्री की अवस्था काफी हो जाने पर भी उसकी ओर से उसके विवाह की चिन्ता नहीं हुई। एक दिन रात्रि में राजा के यहाँ जलसा लगा। संगीत आदि के पश्चात् एक वैश्या का नृत्य आरम्भ हुआ। वैश्या नृत्य-कला में वहुत निपुण थी। वहुत देर तक उसका नृत्य होता रहा, परन्तु फिर भी राजा ने उसे वैठ जाने को न कहा। वहुत थक जाने पर उसने साज वजाने वालों को इशारे से कहा, "वहुत हुआ, अव इस गति से नाचा नहीं जाता, वाजों की गति धीमी करिये।" वाजेवाले चतुर थे। उन्होंने सोचा, यदि कुछ अन्तर किया गया और राजा असंतुष्ट हो गया तो सारा करा कराया गुड़ गोवर

हो जायेगा और राजा पर्याप्त इनाम नहीं देगा। बाजे वालों ने वैश्या को सावधान करने के लिये संगीत स्वर में एक कवित्त कहा:—

"बहुत गई थोड़ी रही, थोड़ी भी अब जाय।"

अर्थात् बहुत समय तो निकल गया, अब थोड़े से समय के लिये अपनी कमाई मत गंवाओ, नाच की गति शिथिल मत करो।

यह सुनकर वैश्या ने अपना नृत्य पूर्ववत जारी रखा। उधर कविता सुनकर श्रोताओं पर जादू का सा प्रभाव हुआ। राजा के पुत्र ने कविता सुनकर अपना सोने का कड़ा वैश्या पर न्योछावर कर दिया। राजा की पुत्री ने अपना हार न्योछावर कर दिया। एक साधु, जो भूला-भटका इस सभा में पहुँच गया था, वह भी बाजे वालों का पद सुनकर द्रवित हो गया और उसने (और तो कुछ उसके पास था नहीं) अपना कम्बल ही न्योछावर कर दिया। यह सब कुछ देखकर राजा तो दंग ही रह गया, वैसे भी वह कंजूस प्रकृति का था। हैरान होकर जब उसने कारण पूछा तो पुत्र, पुत्री व साधु ने कारण इस प्रकार बताये।

पुत्र : मेरी उम्र गुजरती जा रही थी। निठल्ला बैठा-बैठा मैं बहुत ऊब गया था और विचार कर रहा था कि राज्य प्राप्त करने के लिये आपकी एक दिन हत्या कर डालूं; इस समय जब यह कविता सुनी तो आपकी हत्या का विचार त्याग दिया।

पुत्री : मेरी भी उम्र ढल रही थी किन्तु आप मेरे विवाह की ओर से निश्चिन्त थे। मैं कुछ ही दिनों में मंत्री के लड़के के साथ भागने की योजना बना रही थी। यकायक आज यह कविता सुनी तो मैंने भाग जाने का विचार छोड़ दिया।

साधु : अपनी कठोर तपस्या और कष्टमय जीवन से बहुत ऊब गया था। सोच रहा था, क्यों न कुछ दिन ससारियों का आनन्द भोग लूं। आज यह कवित्त सुनकर चित्त गद्-गद् हो गया और मैंने पुनः निश्चय कर लिया कि अपना तपस्वी जीवन आयु भर नहीं छोड़ूंगा।

राजा की आंखें खुलीं। लड़की का शीघ्र ही विवाह किया, लड़के को राज-पाट सौंपा और आप जलसे में उपस्थित उस साधु के संग तप करने चल दिया।

जीवन में कभी ऐसे साधु-वाक्य सुनने को मिलते हैं कि जीवन की दिशा को ही मोड़ देते हैं।

५४—ये पूर्व जन्म में हमारे कौन ?

एक वार एक योगी ने एक वीमार को ४ गोलियां खाने को दीं। साथ ही अपने योगवल से वीमार को यह भी वरदान दिया कि जव-जव वह रोग निवृत्ति के लिये गोली खायेगा उस समय उसे जो भी सामने दीखेगा उसी की छाया में दीखने वाले का पूर्व-जन्म भी दिखाई पड़ेगा। वीमार ने योगी के समक्ष ही एक गोली खाई तो योगी की छाया में वीमार को अपनी माता के दर्शन हुए अर्थात् वह योगी पूर्व-जन्म में वीमार की माता थी।

एक दिन वीमार ने घर में रखा दूध पी जाने पर बिल्ली को मारा। इसी समय उस योगी की दी हुई गोली खाई तो क्या देखता है कि विल्ली की छाया में वीमार की स्त्री खड़ी है।

एक दिन एक मित्र ने वीमार को दगा दिया और उसे लूट लिया। जव मित्र पकड़ा गया तो ऐसे समय जव वीमार ने

गोली खाई तो मित्र की छाया में उसे अपने पिता के दर्शन हुए जो मर चुके थे।

चौथी बार जब अनचाहते शिकार में एक चिड़िया को घायल करके बीमार घर लाया और इसी समय गोली खाई तो देखता है कि चिड़िया के साये में उसका पुत्र खड़ा था जो थोड़े समय पूर्व मर चुका था।

आज जिन व्यक्तियों अथवा जीवों पर हम अत्याचार कर रहे हैं, कौन कह सकता है वे ही पूर्व-जन्म में हमारे कितने निकट के सम्बन्धी रहे हों? अन्य बातों को छोड़कर यदि हम केवल इसी बात का विचार करके भी दूसरों का अनिष्ट करना छोड़ दें तो कितनी बड़ी बात कर सकते हैं।

५५—सबको अपनी जान प्रिय

एक बावड़ी के बीच एक चबूतरा था। उस चबूतरे पर एक बन्दर अपने बच्चे को लेकर बैठा था कि यकायक बावड़ी में पानी तेजी से बढ़ने लगा। जब पानी बन्दर तक पहुँच गया तब उसने अपने बच्चे को उठाकर अपनी पीठ पर बिठा लिया। परन्तु पानी फिर भी बढ़ने लगा। तब तो बन्दर अपनी तथा अपने बच्चे की रक्षा करने के लिये अपने पिछले दो पैरों पर खड़ा हो गया। पानी फिर भी बढ़ता गया। अब तो बन्दर को अपने प्राण रक्षा की पड़ी। दूसरा कोई उपाय न देखकर उसने बच्चे को नीचे पानी में डाल दिया और वह स्वयं उसके ऊपर खड़ा हो गया।

सच है सबको अपने प्राण सबसे अधिक प्यारे हैं। और यही कारण है कि जो अपने प्राण दूसरों पर न्योछावर करते हैं वे मर कर भी सदा अमर हो जाते हैं।

५६—*परोपकारी विचार*

एक सज्जन रेल में सफर करते समय अपने दोनों पैरों को खिड़की से वाहर कर लेटे हुए थे। अकस्मात् उनके पैर का एक जूता निकल पड़ा और वाहर गिर गया। वह सज्जन हड़वड़ा कर उठे, तुरन्त उन्होंने अपने पैर से दूसरा जूता निकाला और ठीक उसी स्थान को लक्ष्य वनाकर उसे फेंक दिया जहां पहला जूता जाकर गिरा था। पास में वैठे उत्सुक लोग उन सज्जन से पूछे विना न रह सके कि आपने यह क्या किया। सज्जन वोले, वात स्पष्ट है। एक जूता वाहर गिर जाने के पश्चात् वचा हुआ एक जूता मेरे किसी काम का न होता और गिरे हुए जूते को मैं ला नहीं सकता था, अतः मैंने ही अपना दूसरा जूता फेंक दिया। लक्ष्य वनाकर इसलिए फेंका कि एक ही व्यक्ति को दोनों जूते मिल जायें तो उसके काम आ जायेंगे।

दूसरों का भला चाहने वालों की ऐसी तीव्र एवं शीघ्रगामी बुद्धि सचमुच स्तुत्य है।

५७—*गुणों से परे जाना होगा*

एक वनिया सुनसान मार्ग से एक समय जा रहा था कि यकायक उसे रास्ते में तीन चोरों ने घेर लिया। उनमें से एक था ब्राह्मण, एक क्षत्रिय और एक शूद्र। वनिया चतुर था। उसने कहा, "आप मेरे प्राण लेकर क्या करेंगे, आपको तो धन से मतलव है और वह मैं देने को तैयार हूँ।" फिर अपनी चतुराई से फूट डलवाकर ब्राह्मण-क्षत्रिय को एक तरफ कर लिया और शूद्र को भगवा दिया। फिर और चतुराई से ब्राह्मण को अपनी

तरफ कर क्षत्रिय को भी भगवा दिया। शेष रहा ब्राह्मण। बनिये ने कहा, "अब तो आप अकेले ही रह गये हैं। चलिये निकट ही गंगातट पर, वहां जाकर मैं आपको अपनी समस्त सम्पत्ति दे दूँगा।" ज्योंही वे दोनों गंगातट पर पहुँचे कि बनिये ने हल्ला मचा दिया, "चोर, चोर, चोर।" शोर सुनते ही बड़ी संख्या में लोग जमा हो गये और ब्राह्मण बेचारा भी भाग खड़ा हुआ।

बनिया अर्थात् चतुरजीव, शूद्र हमारे अन्दर रहने वाला तमोगुण, क्षत्रिय हमारे अन्दर का रजोगुण तथा ब्राह्मण हमारे अन्दर रहने वाला सतोगुण। इन तीनों में से तमोगुण, रजोगुण तो त्याज्य हैं ही, सतोगुण जो सर्वश्रेष्ठ है उसे भी आगे चलकर अन्तिम ध्येय का बाधक समझकर छोड़ना होता है। गंगातट अर्थात् हमारा अन्तिम ध्येय, ईश्वर।

५८—एक क्षण के भी हम मालिक नहीं

धर्मराज युधिष्ठिर के पास एक बार एक भिक्षुक आये और एक विशेष वस्तु के लिये उनसे मांग की। युधिष्ठिर के पास उस समय वह वस्तु शीघ्र उपलब्ध नहीं थी। अतः उन्होंने भिक्षुक को अगले दिन आने को कहा। युधिष्ठिर के महल के बाहर एक बड़ा घण्टा लटका रहता था। वह घण्टा बहुत कम बजाया जाता था और प्रायः किसी विजय की सूचना देने के निमित्त ही बजाया जाता था। युधिष्ठिर ने भिक्षुक को जो आश्वासन दिया उस समय भीम भी निकट ही थे और उन्होंने युधिष्ठिर की बात सुन ली। भीम ने तुरन्त ही जाकर घण्टा जोरों से बजाना शुरू किया। घण्टा सबने सु [illegible] भी

बाहर निकल कर आये। पूछा, "भीम, आज किस कारण तुम घण्टा बजा रहे हो।" "महाराज, आज विजय का दिन है इसी हर्ष के कारण घण्टा बजा रहा हूँ" भीम बोले। "किस पर विजय हुई है आज" युधिष्ठिर ने पूछा। "आपने उस भिक्षुक को अगले दिन आने की कहकर निश्चय ही मृत्यु पर २४ घण्टे की विजय प्राप्त कर ली है। असत्य भाषण आप करते नहीं।" युधिष्ठिर भीम की गूढ़ बात सुनकर होश में आये। "निस्संदेह ही मुझे भिक्षुक को अगले दिन आकर मांगने को नहीं कहना चाहिये था, क्षण-भंगुर जीवन में एक क्षण का भी भरोसा नहीं, फिर एक दिन का आश्वासन कौन दे सकता है।" युधिष्ठिर को अपनी भूल मालूम होने पर उन्होंने भिक्षुक को उसी समय बुलवाया और उसकी मांग पूरी की। कहा भी है:—

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब ।
पल में प्रलय होयगा, बहुरी करोगे कब ।।

५६—अपने-अपने मन का भाव

एक भक्त प्रभात की वेला में कीर्तन करता हुआ जा रहा था। रास्ते में एक बनिये का घर पड़ा। अधिकतर लोग सवेरे देर तक सोते हैं। प्रात काल आलस्य छोड़कर ईश्वर का स्मरण करने वाले लोग तो बहुत ही थोड़े होते हैं। बनिये ने बिस्तरे पर पड़े ही पड़े भक्त की आवाज सुनी तो बोला, अरे! देखो, यह सवेरे-सवेरे क्या बोलता चला जा रहा है। "नौन तेल अदरक, नौन तेल अदरक।"

भक्त आगे बढ़ा तो एक पहलवान का घर रास्ते में पड़ा। बिस्तरे में पड़े ही पड़े उसने भक्त की वाणी का अर्थ लगाया "डण्ड बैठक कसरत, डण्ड बैठक कसरत।"

आगे चलकर एक भक्त का घर पड़ा। उसने भक्त की वाणी सुनकर अनुमान लगाया "वाह, बहुत सुन्दर, यह तो "सीताराम दशरथ, सीताराम दशरथ" का मधुर कीर्तन बोल रहा है।"

बनिये का मन दुकान की वस्तुओं में रहता था। अतः उसने 'नोन तेल अदरक' का अनुमान लगाया, पहलवान का मन व्यायाम में रहने से उसने 'डण्ड बैठक कसरत' का अनुमान लगाया और भक्त का मन भक्ति में रहने के कारण उसने सोचा यह 'सीताराम दशरथ' बोल रहा है।

दिन भर हम जो कार्य करते हैं उसमें हमारी आसक्ति हो जाती है, उधर हमारे धर्मग्रन्थ बार-बार हमारे हित में उपदेश करते हैं कि अनासक्त होकर कर्म करो, निष्काम कर्म करो, मन को ईश्वर में लगाकर कर्म करो, परन्तु हम अपने मन में अनेक महल खड़े करके पिंजरे में पक्षी के समान बन जाते हैं और विचारों को ऊपर नहीं दौड़ाते।

६०—*वेश की पूजा*

अन्तिम मुग़ल सम्राट बहादुर शाह ज़फर के यहाँ महल में एक दिन दावत हुई। उसी दावत में कविश्रेष्ठ मिर्ज़ा ग़ालिब को भी आमन्त्रित किया गया। मिर्ज़ा बहुत ही सादे वेष में दावत खाने पहुँचे। पर यह क्या, उन्हें तो दरवाज़े पर ही रोक दिया गया। उस दरवाज़े से तो बहुत बड़े-बड़े लोग अत्यन्त लुभावनी वेश-भूषा में प्रवेश पा रहे थे, ऐसे सादा वेश वाले की भला वहाँ कहाँ पूछ होती। आख़िरकार मिर्ज़ा ने एक अन्य द्वार से बहुत कठिनाई से प्रवेश पाया। एक दूसरे दिन दावत में मिर्ज़ा

ग़ालिब भी बहुत बन-ठन कर पहुँचे और तुरन्त पहले ही द्वार से प्रवेश पा गये। स्वयं बादशाह ने हाथ मिलाकर उनका स्वागत किया। जब दावत शुरू हुई तब मिर्ज़ा ग़ालिब स्वयं न खाकर दावत की बढ़िया-बढ़िया चीज़ें अपने लिबास को चटाने लगे। बादशाद उधर से गुजरे तो पूछा, "मिर्ज़ा, भला यह क्या कर रहे हो?" मिर्ज़ा ने जवाब दिया, "हुजूर मेरे से बड़ी पोशाक है जिसकी बदौलत मैं अन्दर आ सका हूँ, इसी की खातिर कर रहा हूँ वरना मैं तो कल भी हाज़िर हुआ था।" बादशाह सुन-कर शरमिन्दा हो गये।

हम सभी अनुभव कर रहे हैं कि जिधर देखो उधर मनुष्य के गुणों से अधिक उसके वेश की पूजा हो रही है।

६१—*भेष का प्रभाव*

एक बार एक बहरूपिया शिव का भेष बनाकर एक गृहस्थ के यहाँ गया। शिव की कल्पना से और बहरूपिये के भेष से प्रभावित होकर गृहस्थ ने उसे एक रुपया देना चाहा। परन्तु बहरूपिये ने स्वीकार नहीं किया। बहरूपिया थोड़ी देर में अपने घर गया, भेष सामान्य किया और पुनः उस गृहस्थी के पास उपस्थित होकर रुपया मांगा। गृहस्थ ने पूछा, "भला तुमने उसी समय क्यों नहीं ले लिया जब मैं दे रहा था?" बहरूपिया बोला, "मैं उस समय सर्वत्यागी शिव के रूप में था, रुपये का स्पर्श कैसे कर सकता था।"

इस प्रकार की कथा रावण के सम्बन्ध में आती है। मन्दोदरी ने रावण से कहा, "आपको सीता प्राप्त करने की इतनी तीव्र इच्छा है तो आप तो मायावी हैं, क्यों न राम का

भेष धर कर सीता के पास जाते ?" रावण ने कहा, "धिक्कार है तुम्हारी बुद्धि को। अरे, जब मैं राम का भेष धारण करूंगा तो क्या उस समय मेरे मन में विषय-वासना बनी रहेगी ?

वेश का ऐसा ही अद्‌भुत प्रभाव है। सादा, सरल वेश से जहाँ हमारे विचार में सरलता, उज्ज्वलता एवं निष्कपटता आयेगी वहां बहुत तड़क-भड़क वेश में मिथ्या अहंकार उत्पन्न होगा, जैसा आज के युग में हम सर्वत्र देख रहे हैं।

६२—*कर्म की गहनता*

लक्ष्मण ने लव कुश से कहा, "तुम निरे बच्चे हो, राम की शक्ति को नहीं जानते। राम के चरण-स्पर्श मात्र से पत्थर बनी अहल्या को पुनः अपना स्वरूप प्राप्त हो गया था।"

लव कुश, जो सीता माता के त्याग के कारण राम से चिढ़े हुए थे, बोले—"जी, हम अच्छी तरह जानते हैं, पत्थर को अहल्या स्वरूप प्राप्त हुआ वह साधु-वाक्य को सत्य करने के लिये। गौतम मुनि ने अहल्या को श्राप देते समय कहा था "त्रेतायुग में श्रीराम इधर होकर गुजरेंगे, उस समय उनके पैरों का स्पर्श पाकर तुम्हें मानव-स्वरूप मिल जायेगा।"

वास्तव में इस चमत्कार का वास्तविक कारण क्या हुआ ? क्या वह इसलिये हुआ कि साधु-वाक्य को सत्य होना था अथवा इसलिये कि राम ने पत्थर का स्पर्श किया। इस गुत्थी को कौन सुलझाये ? गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है, "कर्म की गति अत्यन्त गहन है।" "गहना कर्मणो गतिः"। दोनों ही कारणों के पीछे भगवद्‌शक्ति तो है ही। साधु की शक्ति भी उसी परब्रह्म राम की ही शक्ति है। भक्त और भगवान में भेद अज्ञानी ही कर सकते हैं। वास्तव में दोनों एक ही है।

६३—नर से नारायण की कृपा बड़ी

एक बार श्रीकृष्ण और अर्जुन साथ जा रहे थे कि मार्ग में एक अत्यन्त दरिद्री ब्राह्मण दिखाई पड़ा। उसकी दरिद्रता देख कर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, "इस बेचारे गरीब ब्राह्मण को कुछ दो।" अर्जुन ने ब्राह्मण को पास बुलाकर कुछ धन दिया जिसे ब्राह्मण सहर्ष लेकर चला गया। दूसरे दिन ब्राह्मण वैसी ही अवस्था में फिर भटकता दिखाई दिया। अर्जुन को सहज ही जिज्ञासा हुई और उन्होंने पूछा, "ब्राह्मण देव, क्या कारण है कि अब भी तुम दरिद्रों जैसे भटक रहे हो।" ब्राह्मण ने बताया कि जो धन उसे मिला था वह चोरी हो गया है। अर्जुन को दया आई और इस बार उन्होंने ब्राह्मण को पांच सोने की अशर्फी दीं। ब्राह्मण प्रसन्न होकर अशर्फी घर ले गया, परन्तु उसका दुर्भाग्य कि इस बार भी उसको मिला धन चोरी हो गया। अर्जुन ने ब्राह्मण पर पुनः दया की और इस बार उसे एक पारस मणि दी। पारस मणि लोहे को सोना बना देती है, यह ब्राह्मण को मालूम था। उसने बहुत कृतज्ञता से अर्जुन की यह भेंट स्वीकार की। पहले असावधानी के कारण चोरी होने का उसे बहुत दुःख था, अतः इस बार पारस मणि को घर में पानी की एक मटकी के अन्दर छिपा कर रख दिया। ब्राह्मण ने सोचा था कि मटकी बहुत सुरक्षित स्थान है और सम्भावना नहीं कि पारस वहाँ से चोरी जा सके। परन्तु भाग्य के आगे किसका बस चलता है। दूसरे दिन ब्राह्मणी उसी मटके को लेकर जल भरने गयी और मटकी साफ करते समय पारस को पत्थर का टुकड़ा समझकर उसे नदी में फेंक दिया। कुछ दिन बाद जब अर्जुन ने ब्राह्मण को फिर वैसे ही फटेहाल देखा तो उसके दुर्भाग्य की प्रबलता पर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहा। अर्जुन

ने निश्चय कर लिया कि आगे से इस भाग्यहीन ब्राह्मण को कुछ नहीं दूँगा।

मनुष्य की दया जहाँ समाप्त होती है वहीं से भगवान की दया आरम्भ होती है। जब श्रीकृष्ण को अर्जुन का निश्चय मालूम हुआ तो इस बार स्वयं उन्होंने ब्राह्मण पर दया करके उसे दो पैसों का दान दिया। अर्जुन से इतने बड़े-बड़े दान प्राप्त करने के बाद स्वयं भगवान से इतना छोटा दान प्राप्त करने पर उसे आश्चर्य और दुःख तो बहुत हुआ परन्तु भगवान को वह इन्कार भी कैसे कर सकता था। पैसे लेकर अनमनेपन से वह घर जा रहा था कि रास्ते में उसने देखा कि एक मछुआ अपने हाथ में एक तड़फती हुई मछली को लिए चला जा रहा है। ब्राह्मण को दया आई। उसने सोचा, मेरे इन दो पैसों से क्या होना जाना है, क्यों न इस मछली को ही जीवन दान दे दूं? यह सोच कर उसने मछुए को अपने मन की बात बताई। मछुए को दो पैसों से अधिक उस मछली पर कमाने की आशा नहीं थी (उन दिनों के पैसे आजकल के पैसों के समान नहीं थे) और उसने खुशी-खुशी वह मछली ब्राह्मण को दे दी। ब्राह्मण ने भी एक बर्तन में पानी भर कर मछली को उसमें डाल दिया। ब्राह्मण का सौभाग्य कि मछली पानी में उल्टी पड़ी और उसके मुँह से पारस मणि निकल पड़ी। ब्राह्मणी द्वारा नदी में फेंकी हुई यह वही पारसमणि थी जिसे इस मछली ने उस समय निगल लिया था। पारस देखकर ब्राह्मण के हर्ष का क्या ठिकाना था, यकायक वह चिल्ला पड़ा, "मिल गया, मिल गया।" ब्राह्मण के शोर मचाते समय पास ही एक व्यक्ति बैठा था। इसी व्यक्ति ने ब्राह्मण की अशर्फी चुराई थी। जब उसने "मिल गया, मिल गया" का शोर सुना तो उसे निश्चय हो गया कि ब्राह्मण ने उसे

पहचान लिया है। व्यक्ति डरा और ब्राह्मण के बहुत निकट आकर बोला—"अरे, इस प्रकार शोर आप क्यों मचा रहे हैं, आपकी चीज़ आपको अभी लौटा देता हूँ।" इस प्रकार ब्राह्मण को अपनी खोई सभी चीज़ें प्राप्त हो गयीं और वह अत्यन्त हर्षित होता हुआ अपने घर चला गया। उसकी दरिद्रता का अन्त हुआ और वह सुखपूर्वक अपना जीवन बिताने लगा।

मनुष्य के हृदय में यदि दया-भाव हो तो वह दान तो दे सकता है, परन्तु उस दान के लेने वाले व्यक्ति को लाभ होगा भी कि नहीं यह तो ईश्वर पर ही निर्भर है, क्योंकि वही मनुष्य के भाग का निर्माता है। जब दरिद्री ब्राह्मण के भाग्य का उदय हुआ तभी उसे मिला दान सार्थक हुआ।

इस कथा से हमें यह भी शिक्षा मिलती है कि जब स्वयं भगवान कृपा करके कोई वस्तु देते हैं, चाहे वह कितनी भी हीन क्यों न हो, निष्फल नहीं जाती जैसे श्रीकृष्ण की दी हुई छोटी सी वस्तु व्यर्थ नहीं गयी। अतः क्या ही अच्छा हो यदि हम अपनी चाही वस्तुओं के लिये भगवान से ही प्रार्थना करें। यों भी नर से आशा करने पर हमारा नारायण में विश्वास कम हो जाता है।

गोस्वामी तुलसीदासजी की ये पंक्तियां हम याद रखें:—

"मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तो कहहु कहा विस्वासा।"

मेरा दास कहलाकर नर से आशा करे तो कहो ऐसे व्यक्ति का क्या विश्वास है।

६४—कार्य से पूर्व विचार आवश्यक

एक समय राजा भोज ने अपने महल के अन्तःपुर में प्रवेश किया। उस समय उनकी रानी एक दासी से गुप्त वार्ता

कर रही थी। राजा ने कोई परवाह नहीं की और रानी के अत्यन्त निकट पहुँच गये। रानी को बड़ा अटपटा लगा कि राजा ने सामान्य शिष्टाचार का पालन भी नहीं किया। आवेश में आकर बोल उठी—"आइये मूर्खजी"। रानी राजा को सदैव बड़े आदर सम्मान से बोलती थी। अत: आज की बात से राजा को आश्चर्य तो हुआ, परन्तु रानी के आज पहली बार के ऐसे असाधारण व्यवहार में अवश्य कोई समझदारी की बात होगी सोचकर राजा ने अपना संयम रखा और क्रोध नहीं किया। उदास मन से वह चुपचाप अपनी सभा में जाकर बैठ गया। थोड़ी देर में महान कवि कालीदास राजा भोज की सभा में आये। उन्हें देखते ही राजा ने भी उन्हें उसी प्रकार सम्बोधन किया जैसे अभी थोडी देर पूर्व रानी ने उनका किया था अर्थात् कहा—"आइये, मूर्खजी"। कालीदास तो इस प्रकार का सम्बो-धन सुनकर अवाक् ही रह गये, परन्तु फिर भी उत्तेजित नहीं हुए। बड़े शान्त भाव से राजा से बोले—"मैंने इन पांच बातों में से एक भी नहीं की फिर आपने मुझसे मूर्ख कैसे कहा"—

१. मनुष्य चलता जाये और खाता जाये।
२. बात करता जाये और हँसता जाये।
३. गयी चीज का शोक करे।
४. उपकार किये पर गर्व करे।
५. गुप्त वार्ता करने वालों के पास जाकर खड़ा हो जाये।

कालीदास की बात सुनकर राजा ने विचार किया। उनकी समझ में आ गया कि उनसे कौनसी त्रुटि हुई है। अत: रानी ने उचित ही कहा था।

राजा ने समस्त वृतान्त कालीदास को सुनाया और उनसे क्षमा मांगी।

मनुष्य कार्य करने से पूर्व यदि भली भांति सोच ले कि उसके द्वारा कोई ऐसी बात तो नहीं होने जा रही है जिससे बाद में उसकी हँसी हो और अपनी करनी पर पश्चाताप करना पड़े तो कितना अच्छा हो।

६५—*अधिक धन अशांति का कारण*

एक धनी मनुष्य था। धनी तो वह बहुत था, परन्तु जितना धन उसके पास था उससे उसे संतोष नहीं था। इसी असंतोष के कारण उसने बहुत जपतप करके धन की देवी लक्ष्मी को प्रसन्न किया। जब लक्ष्मी ने धनी से वर मांगने को कहा तब धनी ने कहा—"आप मेरे पर प्रसन्न हों तो कृपा करके यह वर दें कि मेरे घर नौबत बजे। अब नौबत या तो राजा के घर बजती है या जिस व्यक्ति के पास ५६ करोड़ का धन हो। धनी व्यक्ति राजा तो था नहीं अतः नौबत उसके यहां जभी बज सकती है जब उसके पास ५६ करोड़ का धन हो जाये। लक्ष्मी ने धनी से कहा—"तूने इतना कष्ट उठाया है तो तेरी इच्छा अवश्य पूर्ण करूंगी, परन्तु इतना अधिक धन होने से तू मनुष्य नहीं रह जायेगा। धनी की बुद्धि में लालच ने इतना घर कर रखा था कि वह लक्ष्मी की इतनी स्पष्ट उक्ति भी नहीं समझ सका। लक्ष्मी की इच्छा से वह अब ५६ करोड़ रुपयों का मालिक बन गया।

अब धनी के यहां नौबत तो बजने लगी, परन्तु जब वह घर से निकला तो बच्चे उसे देखकर भागने लगे। जो बच्चे अभी तक बड़े स्नेह से धनी के पास आते थे वे अब भय से उसकी ओर ताकते भी नहीं थे। धनी ने बहुत लालच देकर बच्चों को अपने पास बुलाने की चेष्टा की, क्योंकि धन की तो उसके पास

अब कमी थी नहीं, परन्तु ज्यों-ज्यों वह चेष्टा करता बच्चे उल्टे उससे अधिक दूर भागते। उसके लालच देने का बच्चों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इससे धनी को ठेस लगी और वह बहुत दुःखी हुआ। मनुष्य धन के बिना तो जैसे-तैसे जीवन-निर्वाह कर सकता है, परन्तु स्नेह के बिना तो उसका जीवन दूभर हो जाता है। धनी ने घर जाकर शीशा उठाकर जो देखा तो क्या देखता है कि उसकी शक्ल उल्लू की सी हो गयी है और उसकी पीठ पर सोने की गठरियाँ लदी हुई हैं जिससे उसकी कमर टूट रही है। थोड़े ही दिनों में धनी के जीवन में रस नहीं रहा। वह उदास रहने लगा। उसने धन के लोभ का प्रत्यक्ष कटु अनुभव कर लिया था। जब मन की व्यथा असह्य हो गयी तब उसने पुनः लक्ष्मी से प्रार्थना की। धनी ने लक्ष्मी के प्रसन्न होने पर वर मांगा—"आप मेरे पास कृपा कर इतना ही धन रहने दीजिये जिससे मैं सुख-शांति से रह सकूं। मैं दूसरों को प्यार करूं और दूसरे भी मुझे प्यार करें।" लक्ष्मी की कृपा से उसकी वैसी ही स्थिति हो गयी और धनी के पास अधिक धन न होते हुए भी वह सुख-शांति का धनी बन गया।

सच है, धन के लोभ से मनुष्य की ऐसी ही दशा होती है। धन की अधिकता से मनुष्य अभिमानी बन जाता है। मीठा बोलना छूट जाता है। बात-बात में क्रोध करता है। दूसरे लोगों को अपने से हीन समझता है। मन के अन्दर दया, क्षमा आदि दैवी गुणों का अभाव हो जाता है और इनके अभाव में चेहरा कुरूप हो जाता है। यह कुरूपता ही उल्लूपन है। ऐसे चेहरे को देखकर बच्चे, जो स्नेह की मूर्ति हैं, कैसे ऐसे व्यक्ति की ओर आकर्षित हो सकते हैं?

६६—दीर्घायु कौन ?

जो कठोर होता है वह जल्दी नष्ट हो जाता है, परन्तु जो कोमल है, नम्र है, विनीत है वह बहुत समय तक बना रहता है। दुनिया में देखो तो शेरों की संख्या कम होती जा रही है। अब तो विभिन्न देशों की सरकारें चिन्तित होकर यह प्रयत्न कर रही हैं कि संसार से शेर का कहीं बिल्कुल अस्तित्व ही नष्ट न हो जाये। शेर के अन्धाधुन्ध शिकार को रोकने के लिए कठोर कानून बनाये जा रहे हैं। उधर गरीब बेचारी सरलता और नम्रता की मूर्ति गौ संसार में बनी रहे क्या इसके लिए भी किसी को चेष्टा करनी पड़ती है ?

प्रसिद्ध सन्त व दार्शनिक चीन देश निवासी कन्फ्युशियस के मरने से कुछ समय पहले की बात है। उन्होंने अपने शिष्यों को पास बुलाया और कहा—"प्यारे बच्चो, जरा मेरे मुँह में झाँक कर तो देखो कि जीभ है या नहीं।" शिष्यों को अपने प्यारे गुरु के यकायक ऐसे प्रश्न से बड़ी हैरानी हुई। उन्होंने गुरु के मुख में झाँक कर देखा और बोले—"गुरुदेव, जीभ है।"

अच्छा तो एक बार फिर मेरे मुँह में झांको और बताओ कि मेरे मुँह में दांत कितने हैं ?

"गुरुदेव, दांत तो एक भी नहीं है।" शिष्यों ने कहा।

गुरुदेव फिर बोले—"कहाँ गये दाँत ? दांत का जन्म तो बाद में हुआ था और जीभ का पहले, तो फिर पहले जीभ क्यों नहीं गयी ?"

शिष्य एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। गुरुदेव के प्रश्न का क्या उत्तर दें, यही सोचने लगे।

गुरुदेव बोले—"सुनो, जीभ है कोमल, इसीलिये अभी तक बची है, दाँत थे क्रूर और कठोर, इसी से वे शीघ्र नष्ट हो गये।"

शिष्यों ने गुरुदेव की वाणी सुनी और गम्भीर विचार में पड़ गये।

६७—क्या कोई धन से बड़ा होता है?

संसार के अधिकतर महापुरुष गरीबी में ही जन्मे, गरीबी में ही बढ़े हुए और गरीबी में ही संसार से चल बसे। परन्तु वे मरकर आज भी अमर हैं। सारे मानव इतिहास में ऐसे एक भी मनुष्य को इसलिये मान नहीं मिला कि उसके पास अतुलित धन-सम्पत्ति व ऐश्वर्य था। फिर भी हम इतिहास से कुछ सीखना नहीं चाहते और जहाँ कोई धनवान हुआ कि वह अपने को श्रेष्ठ और दूसरों को हीन समझने लगता है। दुख तो यह है कि हम भी उनके पीछे-पीछे फिरते हैं, मानो गरीबी कोई पाप हो।

यूनान के एटिका प्रान्त में ऐसा ही एक जमींदार रहता था। उसे अपनी जमीन-जायदाद का बड़ा अभिमान था। जो कोई उसके पास आता उसके सामने अपनी धन-सम्पत्ति की चर्चा करता और फूला नहीं समाता था। उसके पास बात करने को दूसरा विषय ही नहीं था।

उसी देश में उस समय महान संत एवं दार्शनिक महात्मा सुकरात रहते थे। एक दिन धनी पुरुष उन्हीं महात्मा के पास पहुँचे। धनी अपनी आदत से लाचार थे। संत के नजदीक ना

उन्हें बात करने को कोई अच्छा विषय नहीं सूझा, वहाँ भी वे अपनी धन-सम्पत्ति का बखान करने से नहीं चूके। उन्हें आशा थी कि संत सुकरात भी उनके वैभव की बढ़ाई में दो शब्द कहेंगे।

सुकरात के उपदेश का तरीका अनूठा था। वे किसी के दोष की सीधी आलोचना नहीं करते थे। उनके बातचीत का ऐसा ढंग था कि बातचीत की समाप्ति तक सामने वाला स्वयं समझ जाता कि यथार्थता कहाँ है और वह कहाँ भूल कर रहा है। इससे बात तो उसे पूरी तरह हृदयंगम हो ही जाती थी साथ ही किसी प्रकार की हीनता का भी वह अनुभव नहीं करता था।

सुकरात थोड़ी देर तक तो धनी आदमी की बात सुनते रहे, फिर उठे और आलमारी से दुनिया का नक्शा निकाल कर लाये। नक्शे को ज़मीन पर फैलाकर जागीरदार से पूछा—"क्यों भाई, इसमें अपना यूनान देश कहाँ है?"

जमींदार ने तुरन्त अपनी अँगुली से बता दिया। सुकरात ने फिर पूछ—"इसमें अपना एटिका प्रान्त कहाँ है?"

जमींदार काफी देर तक आँखें गड़ाये नक्शे को देखता रहा, तब मुश्किल से कहीं एटिका प्रान्त नज़र आया।

सुकरात ने फिर सवाल किया—"अच्छा भाई, अब ताओ, इसमें आपकी जागीर कहाँ है?"

इस पर जमींदार परेशान होकर बोला—"श्रीमानजी, ला इस नक्शे में कहीं इतनी छोटी-सी जागीर भी दिखाई सकती है?"

सुकरात ने मुस्करा कर कहा—"भाई, जब जागीर तुम्हारी इतनी छोटी-सी है, तब तुम गर्व किस बात का करते हो? तुम्हारी जिस जागीर को इस नक्शे में एक बिन्दु से भी नहीं दिखाया जा सकता, उस जागीर पर इतना गर्व करना कहाँ तक उचित है? सृष्टि के अनन्त ब्रह्माण्ड में उसका क्या स्थान है?"

जमींदार ने सोचा, विचारा, समझा, अपनी जगह से उठा, महात्मा सुकरात के चरणों में सिर झुकाया और गम्भीर विचार में मग्न होकर अपने घर चला गया।

६८—*हम किस कोटि में?*

विश्व-मैत्री और विश्व-बंधुत्व में बड़े अच्छे आदर्श हैं। हम उन्हें थोड़ा भी व्यवहार में उतार सकें तो संसार बहुत कुछ सुख और शान्ति का घर बन सकता है। परन्तु व्यवहार में हम देखते हैं कि जहाँ स्वार्थ आता है वहाँ मित्र-मित्र और भाई-भाई में भयंकर झगड़े होते हैं। हमारे ऋषि-मुनि हमें सिखाते हैं कि प्रत्येक प्राणी को अपनी ही आत्मा समझो अर्थात् जैसे मनुष्य स्वयं अपने आपसे झगड़ नहीं सकता ऐसी ही भावना दूसरों में रखने से आपसी झगड़े और मन-मुटाव समाप्त हो सकते हैं।

संसार में पांच प्रकार के लोग होते हैं—

(१) प्रथम कोटि में वे लोग जो अपनी हानि उठाकर भी दूसरों का भला करते हैं।

(२) दूसरी कोटि के लोग दूसरे का भला तो करते हैं परन्तु साथ ही अपने भले का भी विचार करते हैं।

(३) तीसरी कोटि में वे लोग आते हैं जिन्हें हम स्वार्थी कहते हैं, ऐसे लोग अपनी ही भलाई का ही ध्यान रखते हैं, चाहे दूसरे का नुकसान हो।

(४) एक चौथी श्रेणी होती है जिस कोटि के मनुष्य व्यर्थ में ही दूसरों की हानि करते हैं।

(५) इसके आगे भी एक श्रेणी होती है ऐसे लोगों की, जो जान-बूझ कर अपना नुकसान इसलिए करेंगे जिससे दूसरे को नुकसान पहुँच जाये।

एक वन में एक खुँख्वार आदमी रहता था। उसका नाम भी उसके अनुरूप ही था 'खलेश्वर' उसका यह दावा था कि सारी खलता मेरे से ही निकली है।

एक दिन वह अकेले वन में घूम रहा था कि किसी ने उससे पूछा—"तुम यहाँ क्या कर रहे हो ?"

खलेश्वर ने उत्तर दिया—"मैं यहाँ एक शेर की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

"क्यों भाई, शेर की तुम क्यों प्रतीक्षा कर रहे हो ?" उस व्यक्ति ने पूछा।

"जिससे वह मुझे देख ले और खा जाये।" खलेश्वर बोला।

"क्यों भला, ऐसा आप क्यों चाहते हैं ?" व्यक्ति ने पूछा।

"इसलिए कि जिससे शेर को मनुष्य के रक्त की वान पड़ जाये और गाँव के समस्त लोगों को खा जाये ।"

धन्य है खलेश्वर तुम्हारा विचार। परन्तु आज की दुनिया में तुम्हीं अकेले नहीं हो, हमारे में से अनेक तुम्हारे साथी हैं।

६६—*शक्ति का स्रोत कहां ?*

देवता और दैत्यों के सदा चलने वाले संघर्ष में एक वार देवताओं की विजय हो गयी। देवताओं को इससे वड़ा अभिमान हुआ। समझने लगे, संसार का शासन चलाने वाले हम ही हैं। अग्नि, वायु, इन्द्र कोई भी अभिमान से खाली नहीं था। वे सभी मदान्ध हो उस परम तत्व को भूले हुए थे जिसकी शक्ति से जगत का कार्य चलता है।

देवताओं का गर्व दूर करने के लिए भगवान एक यक्ष का रूप धर कर देवताओं के समक्ष प्रकट हुए। यक्ष का भयंकर और विचित्र रूप देख कर देवता तो अचम्भे में ही पड़ गये। वे सोच ही नहीं सके कि यह अनोखा प्राणी कौन है। अन्त में उन्होंने यक्ष का परिचय प्राप्त करने हेतु अग्नि को भेजा। अग्नि ने यक्ष के पास जाकर पूछा—"तुम कौन हो ?"

यक्ष ने कहा—"पहले तुम बताओ कि तुम कौन हो !"

"मेरा नाम अग्नि है।"

"तुम्हारे में क्या शक्ति है ?"

"पृथ्वी पर जो कुछ भी है, उसे क्षण मात्र में मैं भस्म कर सकता हूँ।" अग्नि ने उत्तर दिया।

यक्ष ने एक तिनका रख दिया और कहा—"लो, इसे जला डालो !"

अग्नि ने सारी शक्ति लगा दी परन्तु वह तिनके का एक कण मात्र भी नहीं जला सका। इस पर वह लज्जित होकर देवताओं के पास लौट गया।

तब वायु यक्ष के पास गया। पूछने पर अपना परिचय बताते हुए वायु ने कहा—"मैं अपनी शक्ति से सब कुछ उड़ा सकता हूँ।"

यक्ष ने पुनः वह तिनका सामने रख दिया और कहा—"लो, इसे उड़ाओ !"

सारा जोर लगाकर भी वायु तिनके को न उड़ा सका और लज्जित होकर देवताओं के पास लौट गया।

तब यक्ष का परिचय प्राप्त करने के लिए इन्द्र स्वयं यक्ष के पास पहुँचे। इन्द्र को देख कर यक्ष आकाश में लोप हो गये और उनके स्थान पर एक अत्यन्त प्रकाशमान देवी दिखाई पड़ी।

इन्द्र ने बहुत नम्रतापूर्वक देवी की शरण ली और विनीत भाव से कहा—"कृपया हमें आज का रहस्य समझाइये। यह यक्ष कौन था, आप कौन हैं और हम ऐसे शक्तिहीन क्यों हो गये ?"

इन्द्र की प्रार्थना पर देवी ने बताया कि परमात्म-तत्व ही यक्ष बनकर आये थे, मैं उन्हीं की शक्ति हूँ। परमात्मा की शक्ति से ही आप देवता बने बैठे हैं। सूर्य का तेज अग्नि की जलाने की शक्ति, वायु की उड़ाने की शक्ति ये सब तुम्हें दी हुई

भगवान की शक्तियाँ हैं। तुम लोगों ने जो दैत्यों पर विजय पाई है वह परमात्मा की दी हुई शक्ति के कारण ही सम्भव हुई।

तब से देवताओं का अहंकार दूर हुआ और सारी शक्ति का केन्द्र वह परमतत्व है ऐसा ज्ञान उन्हें हुआ।

जब तक जीवन में हम अभिमान-शून्य नहीं हो जाते तब तक वह महान शक्ति हमारे अन्दर प्रकट होकर काम नहीं करेगी जो समस्त विश्व का संचालन करती है। अभिमान दूर होने पर लगेगा जैसे हम यंत्र हैं वह यंत्री है, हम गाड़ी और वह चलाने वाला और ऐसी स्थिति होने पर ही हमारे द्वारा जगत में महान सेवा-कार्य सम्भव हो सकेंगे।

७०—*अफीम की उत्पत्ति उर्फ पागलपन का जन्म*

एक साधु की कुटिया में जब देखो तब कहीं से आकर एक चूहा चक्कर लगाया करता था। एक दिन सहज ही साधु की दृष्टि उस चूहे पर गयी और उन्हें कुछ कौतुक हुआ। साधु सिद्ध योगी थे, उन्होंने चूहे को बोलने की शक्ति प्रदान की और उससे पूछा—"तुझे कोई दुःख तो नहीं है?" चूहे ने कहा, "एक बिल्ली मुझे रोज़ आकर परेशान करती है अतः आप कृपा करके मुझे यदि बिल्ली बना दें तो फिर कोई भय नहीं रहेगा।" तत्काल साधु ने चूहे को बिल्ली बना दिया। थोड़े दिन बाद साधु ने उस बिल्ली से पूछा—"कहो, अब तो सुखी हो?" "नहीं महाराज, इधर कभी-कभी एक कुत्ता आता है और मुझे बहुत डराता है। मैं दौड़ कर पेड़ पर न [illegible] वह दुष्ट मुझे खा ही डाले।" बिल्ली के चाहने पर [illegible] से कुत्ता बना दिया। थोड़े दिन बाद कुत्ते ने [illegible] ते-फांदते

बन्दरों को देखा और सोचा—"अरे देखो, ये कितने सुखी हैं, कैसे स्वतंत्र हैं, कितना खाने को मिलता है इन्हें, और एक मैं हूँ कि दर-दर भटकता हूँ फिर भी सदा भूखा ही रहता हूँ। साधु से प्रार्थना करने भर की देर थी कि उन्होंने कुत्ते को बन्दर बना दिया। गर्मी का मौसम आया तब इस बन्दर बने प्राणी को पानी का कष्ट होने लगा, इधर सूअरों पर दृष्टि गयी तो देखा कि वे पानी में पड़े मौज कर रहे हैं। बन्दर की इच्छा फिर शरीर बदलने की हुई और साधु ने अब उसे सूअर बना दिया। सूअर बनकर जिस वन में वह विचर रहा था, एक दिन उसी बन में एक राजा को उसने हाथी पर बैठकर शिकार खेलतें देखा। राजा ने कई सुअरों को तो अपने तीर से मार ही डाला। यह सुअर भी तीर का शिकार होते-होते बचा। अब तो उसे सूअरपन से घृणा हो गयी और साधु से प्रार्थना की कि कृपया आप मुझे हाथी बना दीजिये। अब वह हाथी बनकर राजा के महल में रहने लगा। एक दिन उस पर राजा-रानी दोनों सवार हुए। हाथी को इस बात का बहुत बुरा लगा कि उस पर रानी भी सवार हुई है, वह तो केवल राजा को ही अपने ऊपर बिठाना चाहता था। आवेश में आकर दोनों को गिरा कर वह भाग गया। साधु के पास पहुँच कर बोला—"मैं राजा-रानी को गिराकर भाग आया हूँ। राजा मुझे इतना प्यार नहीं करता जितना वह रानी को करता है, मेरे पर तो सवारी करता है परन्तु रानी को तो गोद में ही बिठा लेता है, अतः आप तो मुझे एक सुन्दर लड़की बना दीजिये। साधु ने उसे सुन्दर लड़की बना दिया। लड़की ने अपने को झूठ-मूठ एक राजकुमारी बताकर एक राजकुमार से विवाह कर लिया। एक दिन राजकुमार व उसकी पत्नी एक कुए के पास से जा रहे थे

कि यकायक पत्नी का पैर फ़िसल गया और वह कुए में गिरकर मर गयी। राजकुमार अपनी पत्नी को बहुत चाहता था, वह उसके वियोग में रोने लगा। तभी साधु उधर आये और उन्होंने उसकी पत्नी का चूहे से लेकर अब तक का पूरा इतिहास सुना कर उसका शोक दूर किया। कुए को मिट्टी से भरवा दिया। कालान्तर में कुए से एक वृक्ष निकला। वह वृक्ष "पोस्तो" कहलाया उससे अफीम की उत्पत्ति हुई।

अफीम के सेवन करने वाले में निम्नलिखित खूबियां आती हैं:—

चूहे की नटखटता, बिल्ली का चटोरपन, कुत्ते का झगड़ालूपन (कुत्ता दूसरे कुत्ते को सहन नहीं कर सकता), बन्दर का मोह (अपने मरे बच्चे को भी छाती से चिपटाये रहता है), सूअर का जंगलीपन, हाथी का अभिमान और लड़की की चंचलता।

अफीम सेवन करने वाले विचार कर लें कि वे इनमें से कौन से गुण अपने अन्दर देखा चाहते हैं।

७१—जब अपनी पर बीतती है

कई ऐसे काम होते हैं जो हम बेखटके करते चले जाते हैं, परन्तु ऐसे ही प्रसंगों पर जब हमारे स्वार्थ अथवा महत्व की बात खड़ी होती है तब हम गहरे विचार में पड़ जाते हैं, क्योंकि यदि अभी तक जैसा करते आये हैं वैसा ही यदि हम इस अवसर पर भी करें तो बड़ी व्यक्तिगत हानि उठानी पड़ती है।

एक न्यायाधीश थे। उन्होंने सैकड़ों अपराधियों को फांसी की सज़ा दी थी और ऐसा करने में उन्हें कभी कोई बुराई दिखाई नहीं पड़ी थी। एक दिन खुद उन्हीं जज का लड़का खून के जुर्म में उनके सामने पेश किया गया। बेटे पर जुर्म साबित हुआ और उसे फाँसी देने का समय आया। ये ही जज अब गहरे चिन्तन में पड़ गये और सोचने लगे—"भला फाँसी की सजा कितनी अमानुषी है, इससे अपराधी के सुधरने की आशा हमेशा के लिए नष्ट हो जाती है। अपराधी ने तो खून क्षणिक उत्तेजना के वश में आकर कर डाला। अब हम उसे बहुत संजीदगी के साथ फांसी पर चढ़ायें यह कहाँ तक उचित है?" यदि यह लड़का सामने न आया होता तो जज का फाँसी देने का काम पूर्ववत जारी रहता। आज वही जज पुत्र मोह में पड़कर संकोचवश हो गये और कर्तव्याकर्त्तव्य का विचार करने लगे।

इसी प्रकार की कथा मराठी सरदार नाना फड़नवीस के सम्बन्ध में आती है। एक तरुण पुरुष द्वारा एक स्त्री पर अत्याचार हुआ। बात स्पष्ट थी और नाना फड़नवीस न्यायप्रिय भी थे। परन्तु उन्हें इस नवयुवक के प्रति लगाव होने के कारण उनमें पक्षपात की भावना जग गयी और वे उसे बचाने का मार्ग खोजने लगे। स्त्री जब उनके सामने पेश की गयी तब वे बोले—"ठीक है, तुम कहती हो कि तुम्हारे ऊपर अत्याचार हुआ। किन्तु यह तो बताओ कि उस हालत में भी तुम्हारे शरीर को तो कुछ सुख मिला ही न?"

स्त्री नाना फड़नवीस का भाव ताड़ गयी। बोली—"आप पाखाने में सबेरे बगैर कुल्ला किये बैठे हों कि कोई आकर आपके मुँह में जबरदस्ती थोड़ी चीनी डाल दे तो क्या उस

समय आपको वह चीनी खट्टी, कड़वी अथवा ... चीनी तो मीठी ही लगेगी, परन्तु क्या आप ... उसे थूक नहीं देंगे ?"

स्त्री की बात सुनकर नाना फड़नवीस ... न्यायप्रियता की भावना पुनः जाग्रत हुई और उन्होंने ... को दण्ड दिया।

७२—कंजूस का धन

धन की तीन गतियाँ होती हैं—"दान, भोग और नाश।" जो व्यक्ति दान नहीं देता, अपने ऊपर व्यय नहीं करता, ऐसे मनुष्य के धन की तीसरी गति अर्थात् नाश के सिवाय और क्या हो सकती है ?

एक धनी था। कहने को तो वह धनी था, परन्तु साथ ही वह बहुत कंजूस था। उससे उसकी स्त्री अधिक उदार और गरीबों के प्रति दयावान थी। परन्तु थी सीधी सरल। एक बार धनी व्यक्ति कहीं बाहर गया हुआ था। इस बीच एक धूर्त मनुष्य उसकी स्त्री के पास आया और बोला—"आपके श्वसुर को स्वर्ग में बहुत कष्ट है। उनके दुःखों ... करने के लिए आप उनके पास कुछ स्वर्ण भेजिये, उसी ... कष्ट दूर हो सकेंगे।" धूर्त बातें ... चिकनी-चुपड़ी बातों में वह भोली ... घर है मन्दिर ... जाकर स्वर्ण के ... लाई और उस ... इधर गया ही ... पहुँचा। स्त्री ...

अच्छा ही किया था, इसलिए बड़ी खुशी-खुशी उसने आभूषण को दे देने की बात अपने पतिदेव को सुनाई। पतिदेव ऐसे सोढ़ नहीं थे। वे बहुत झल्लाये और जल्दी-जल्दी में स्त्री से चोर के जाने की दिशा पूछ कर उसी दिशा में अपना घोड़ा सरपट दौड़ा दिया। स्त्री के बताये हुलिये से थोड़ी ही दूर जाने पर उन्हें यह जानने में देर नहीं लगी कि उनके थोड़ी दूर आगे जाने वाला घोड़े पर सवार वह ही व्यक्ति है जो उनके आभूषण ले जा रहा था। चोर को भी समझने में देर नहीं लगी कि उसका पीछा किया जा रहा है। वह जल्दी से एक पेड़ के पास पहुँचा, घोड़ा पेड़ के नीचे छोड़ा और लपक कर पेड़ पर चढ़ गया। इधर धनी व्यक्ति भी अपना घोड़ा पेड़ के नीचे छोड़, चोर को पकड़ने के लिए उसी पेड़ पर चढ़ गया। चोर ने उस व्यक्ति को अपने पास आता देखा तो पेड़ पर से छलांग लगा कर अपने घोड़े पर कूद पड़ा और सवार होकर भाग गया। साथ ही उस व्यक्ति के घोड़े को भी भगा कर ले गया। इस प्रकार चोर को पकड़ने के प्रयास में धनी व्यक्ति ने अपना घोड़ा भी गंवाया। आभूषण पहले जा ही चुके थे।

घोड़ा गँवा कर कंजूस व्यक्ति अपने घर लौटा तब उसकी भोली स्त्री अपने पति का स्वागत करती हुई बोली—"मालूम होता है श्वसुरजी तक पहुँचाने के लिये घोड़ा भी भेंट कर आये हो। यह तो बहुत अच्छा हुआ।"

अन्दर से शर्माता हुआ परन्तु बाहर से अपने मन का भाव छिपाता हुआ वह बोला—"हाँ, ऐसा ही हुआ है, तुम ठीक कह रही हो।"

७३—सत्य ही सर्वस्व

जवाला नाम की एक स्त्री थी। उसके सत्यकाम नाम का एक बालक था। पूर्वजन्म के सुन्दर संस्कार लेकर इस बालक का जन्म हुआ था। जीवन के प्रारम्भ काल से ही उसकी सत्य और धर्म में प्रवृत्ति थी। एक दिन की बात है कि सत्यकाम गौतम ऋषि के पास दीक्षा लेने पहुँचा। उन दिनों ऋषि-मुनि शिष्य की पात्रता की जानकारी करने हेतु शिष्य के गोत्र आदि का परिचय प्राप्त कर लिया करते थे। गौतम ऋषि ने सत्यकाम से भी उसका गोत्र पूछा। सत्यकाम ने कहा—"मुझे तो मेरा गोत्र ज्ञात नहीं है, अपनी माता से पूछ कर आपको बताऊँगा।"

सत्यकाम ने माता से जाकर जब गोत्र पूछा तो उसने कहा—"बेटा, मैं नहीं जानती कि तुम्हारा गोत्र क्या है? अपने पूर्व जीवन में मैं अनेक स्थानों पर दासी काम करती थी, ऐसे ही किसी काल में मैंने तुम्हें प्राप्त किया। अतः मुझे नहीं मालूम कि तुम्हारा गोत्र क्या है। मेरा नाम जबाला है और तुम्हारा नाम सत्यकाम अतः तुम ऋषि से कह सकते हो कि तुम जबाला के पुत्र सत्यकाम हो।"

मां का ऐसा उत्तर पाकर सत्यकाम गौतम ऋषि के पास पहुँचा और मां के बतलाये उत्तर को ज्यों का त्यों दोहरा दिया। गौतम ऋषि बालक का उत्तर सुनकर प्रसन्न हो गये।

ऋषि बोले—"एक ब्राह्मण के सिवा ऐसी निर्भीकता से कोई सत्य नहीं बोल सकता।" उसी समय उन्होंने अग्नि मंगाई और बालक को दीक्षा दे दी।

छांदोग्य उपनिषद् में उपरोक्त सत्य की मार्मिक कथा हमें पढ़ने को मिलती है। कथा से एक यह भी निष्कर्ष निकलता है कि उन दिनों वर्णाश्रम धर्म में आग्रह इस बात पर नहीं होता था कि कौन किस कुल में जन्मा है बल्कि इस बात पर कि वह कैसे संस्कार लेकर जन्मा है, वह कैसे आचार-विचार का है। मनुष्य, महान अथवा अधम, अपने गुण और उन पर आधारित अपने आचरण से ही बनता है।

सत्यकाम की सत्य में इतनी प्रतिष्ठा होने से ही उसने इतना ऊँचा स्थान प्राप्त किया कि आज भी हम उसे बड़े गर्व के साथ याद करते हैं कि ऐसी विभूति हमारे देश में हुई।

७४—*वाणी पर संयम हो*

अनेक बार हम अपना अमूल्य समय ऐसी व्यर्थ की बातों में गंवा देते हैं कि जिनका कोई सिर-पैर नहीं होता। बहुत बोलना एक बड़ा दुर्गुण है। हमें शान्त और चिन्तनशील होकर रहना चाहिए और बोलना तभी चाहिए जब आवश्यक हो। व्यर्थ बोलने से अपनी शक्ति का अपव्यय तो होता ही है, यह भी सम्भावना रहती है कि मुँह से कोई असत्य बात न निकल जाये अथवा ऐसी बात जिससे दूसरे को ठेस पहुँचे। वाणी के संयम के सम्बन्ध में अपने शास्त्रों में प्राचीन श्लोक आता है—

सत्यं ब्रुयात् प्रियं ब्रुयात् न च सत्यम प्रियम्।
प्रियं ब्रुयात् नानृतं ब्रुयात एष धर्म सनातन ॥

अर्थात् सत्य तो बोले ही, झूठ कभी न बोले, परन्तु अप्रिय सत्य भी ऐसा प्रिय बनाकर कहे कि जिससे सुनने वाले के जी को पीड़ा न हो।

ऐसे ही व्यर्थ की बात की एक कथा आती है। एक पुरुष और उसकी स्त्री आपस में गर्मागर्म बहस कर रहे थे। पुरुष कह रहा था लड़के को डॉक्टर बनायेंगे, तो स्त्री कह रही थी—नहीं, नहीं यह आप क्या कह रहे हैं, लड़के को तो इञ्जीनियर बनायेंगे। झगड़े की सीमा यहाँ तक बढ़ गयी कि दोनों का झगड़ा सुनने वाले पास में बैठे एक सज्जन से न रहा गया। वे उन दम्पत्ति से बोले—"आप दोनों में जब इस विषय पर इतना मतभेद है तो क्यों न आप दोनों लड़के की इच्छा जान लें?"

"परन्तु वह तो अभी जन्मा ही नहीं है।" वे दोनों बोल पड़े।

यह सुनकर आश्चर्यचकित हुए वे सज्जन बोले—"धन्य है आपको, मालूम होता है, आपके पास समय गँवाने को बहुत है।"

७५—*श्रम का गौरव*

यह दुनिया सचमुच उन्हीं की है जो स्वयं श्रम करते हैं और जो किसी भी श्रम को ऐसा हीन नहीं मानते जिसे करने में उनकी शान में बट्टा लगता हो। धनवान व्यक्ति तो बहुधा विलासप्रिय हो ही जाते हैं, परन्तु जो निर्धन हैं वे भी मन ही मन यही मनाते हैं और तदनुसार चेष्टा करते हैं कि ऐसा समय आये जब उन्हें भी श्रम न करना पड़े और दैहिक सुख भोग पूर्ण जीवन बिता सकें।

महान विजयी बादशाह नादिरशाह के सम्बन्ध में एक रोचक कथा आती है, नादिरशाह ने कर्नाल के मैदान में जब दिल्ली के मुहम्मद शाह की सेना को पराजित कर दिया तब

एक दिन की बात है कि दोनों बादशाह एक ही तख्त पर बैठे बातचीत कर रहे थे। तभी नादिरशाह को प्यास लगी और उन्होंने मुहम्मदशाह से पानी मंगाने को कहा। उसी समय ज़ोर-ज़ोर से नगाड़े बजने की आवाज़ सुनाई दी मानो कोई उत्सव होने जा रहा हो। नादिरशाह नगाड़े बजने का कारण पूछने ही वाला था कि उसके सामने दस-बारह नौकर हाज़िर हुए। किसी के हाथ में रूमाल था, किसी के हाथ में इत्र तो किसी के हाथ में पानदान था। देखते ही देखते दो-तीन नौकर आगे बढ़े। उनके हाथों में चाँदी का थाल था। थाल में पाँच-छः चाँदी के गिलास सजा कर रखे हुए थे। थाल बेशकीमती वस्त्र से ढका था।

नादिरशाह को यह सब ठाठ-बाट कुछ समझ में नहीं आया। जब पता लगा कि यह सब आडम्बर तो केवल उसे ससम्मान पानी पिलाने के हेतु किया गया है तब उसकी हैरानी का ठिकाना न रहा और वह मुदम्मदशाह से बोला—"हम ऐसा पानी नहीं पीते।" मुहम्मदशाह ने सोचा कि हमने बादशाह की खातिर में जो किया उसमें अवश्य ही कोई त्रुटि रह गई होगी। विलासिता के जीवन से गुजरे मुहम्मदशाह को दूसरा विचार भी कहां से आता। वह नादिरशाह की ओर देखने लगा। तभी नादिरशाह ने चिल्लाकर अपने भिश्ती को आवाज़ लगाई। भिश्ती तुरन्त ही मशक में भरकर पानी लाया, नादिरशाह ने अपने सिर पर से लोहे का टोप उतारा और उसमें पानी डलवा कर पीने लगा। मुहम्मदशाह और उसके दरबारी तो भौंचक्के से देखते ही रह गये। भर पेट पानी पीकर नादिरशाह बोला—"अगर हम भी नाज़ नखरों से तुम्हारी तरह पानी पीते होते तो ईरान से चलकर इतनी दूर हिन्दुस्तान फतह न कर पाते!"

७६—क्या मृत्यु को टाला जा सकता है ?

मृत्यु अवश्यमभावी है उसे टाला नहीं जा सकता। गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सम्बोधित करते हुए कहा— "जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु" अर्थात् जन्मधारी की मृत्यु निश्चित है" चारों ओर घर-घर में मृत्यु का बोलबाला देखते हुए और शास्त्रों के स्पष्ट वचन पढ़कर भी हम अज्ञानवश ऐसा सोचने की मूर्खता करते हैं कि हमारा मरण नहीं होगा। निरे शब्दों में हम इस सत्य को स्वीकार कर भी लेते हों तो भी अपने आचरण से वो यही प्रकट करते हैं मानो हम कभी मरेंगे ही नहीं। केवल मृत्यु ही नहीं उसका समय और स्थान भी नहीं टाला जा सकता इस सम्बन्ध में तेलुगू भाषा में एक रोचक लघु कथा आती है।

एक दिन दोपहर के समय मिथिला नगर में शरवेग नाम का एक नौकर राजा जनक के पास भागा-भागा आया और बोला—"महाराज ! मुझे अभी-अभी बाज़ार में मृत्यु देवता के दर्शन हुए हैं, वे आश्चर्य-भरी दृष्टि से मेरी ओर घूर रहे थे, मालूम होता है वे मेरी तलाश में हैं।"

राजा जनक ने शरवेग को आश्वासन दिया—"मृत्यु से डरने की कोई बात नहीं, मृत्यु तो प्रत्येक दिन के अन्त की निद्रा की ही तरह का एक दीर्घकालीन विश्राम मात्र है। जब निद्रा से हम भयभीत नहीं होते तो मृत्यु से भय लगने का क्या कारण है ? जैसे हम एक कपड़े के पुराने हो जाने पर उसे उतार देते हैं और उसके स्थान पर नये वस्त्र पहन लेते है उससे दुःखी नहीं होते, वरन् सुखी ही होते हैं, वैसे ही हम एक शरीर को त्याग कर दूसरा शरीर धारण कर लेते हैं, इसमें शोक करने की कौन-

सी बात है, गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को ऐसा ही कह कर समझाया था।"

परन्तु शरवेग का भय राजा के इतने समझाने भर से दूर नहीं हुआ। उसने राजा से कहा—"महाराज, मुझे एकदम वेग से चलने वाला घोड़ा इसी समय दिला दीजिये। मैं इसी समय यह स्थान छोड़कर अयोध्या जाऊँगा और वहाँ रह कर सीता माता की सेवा करूँगा।" राजा ने मनोवेग नाम का घोड़ा शरवेग को दिला दिया। शरवेग सवार होकर उस तेज़ घोड़े पर बैठ कर अयोध्या की ओर सरपट भागा।

इसी समय राजा जनक ने नगर में चक्कर लगाया तो एक घर से रोने की आवाज़ सुनाई दी। साथ ही राजा ने उसी घर से मृत्यु देवता को निकलते देखा। नमस्कार के पश्चात् राजा ने मृत्यु देवता से कहा—"आपको देख कर मुझे मेरे परिचर शरवेग की याद आ रही है। उसने थोड़ी सी देर पहले मुझसे कहा था कि उसे आपने बाज़ार में आश्चर्य-भरी दृष्टि से देखा था। क्या मैं आपके आश्चर्य का कारण जान सकता हूँ?"

"उसे देख कर मुझे आश्चर्य हुआ था" मृत्यु देवता बोले, "चित्रगुप्त ने मुझे इस व्यक्ति का पता अयोध्या का बताया था, उसे यहाँ देखकर मुझे लगा कि कहीं चन्द्रगुप्त ने मुझे उसका गलत पता तो नहीं दे दिया है, अथवा कहीं में ही तो गलती नहीं कर रहा हूँ। फिर उसे शाम को अयोध्या में मिलना था और अभी तीसरा पहर हो चुका है, वह मुझे थोड़े से समय में इतनी दूर कैसे मिल सकेगा?"

"चित्रगुप्त का दिया हुआ पता ठीक है" राजा जनक ने हँस कर कहा। "शरवेग तुम्हें देखकर डर गया था और वह

मेरे से बहुत तेज़ घोड़ा माँग कर अयोध्या के लिए चल पड़ा है। अवश्य ही वह आपसे मुकर्रर स्थान व समय पर मिल जायेगा।"

गोस्वामी तुलसीदासजी ने ठीक ही कहा है:—

"तुलसी जसि भवितव्यता तैसी मिलइ सहाइ।
आपुनु आवइ ताहि पहिं ताहि तहां लै जाइ॥

७७—*जहां ईश्वर नहीं है*

व्यक्ति छोटा अथवा बड़ा अपने बाहरी रंग-रूप से नहीं होता। बड़ा होता है वह अपने गुणों से और छोटा अपने अवगुणों से। जैसा मैं हूं वैसे ही दूसरे भी हैं ऐसी भावना रखना बहुत बड़ा गुण है। परन्तु देखने में आते हैं प्राणी-प्राणी में अनेक प्रकार के भेद, ऊँच-नीच के भेद, जाति-भेद, काले गोरे के भेद मानो मानवता मनुष्य के रंग में समाई हो। यह द्वेष का भाव न्यूनाधिक सर्वत्र देखा जाता है, परन्तु कहीं तो इसकी अति होती है।

एक दिन की बात है कि एक गिर्जे में प्रार्थना हो रही थी। तभी उधर से एक काले रंग का आदमी गुजर रहा था। गिर्जे में प्रार्थना होती देखकर उसका भी मन हुआ कि वह भी अन्दर जाकर भगवान से प्रार्थना करने वाले भक्तों में शामिल हो। जब वह गिर्जे के द्वार से अन्दर जाने लगा तभी वहाँ के पहरेदारों ने उसे रोक दिया। कहने लगे—"तुम अन्दर नहीं जा सकते, इसमें काले आदमियों का प्रवेश नहीं है।"

"लेकिन मैं अपने नगर का पादरी हूं।" उस काले आदमी ने कहा।

"इससे क्या हुआ, हो तो काले, जाओ तुम्हारे ईश्वर से इसकी शिकायत कर दो।" खड़े हुए व्यक्तियों में से एक ने व्यंग किया।

दूसरी बार जब गिर्जे में प्रार्थना हो रही थी तब फिर वही काला आदमी आया। उसने फिर अन्दर जाने की कोशिश की और फिर लोगों ने उसे जाने न दिया। तब वह बोला—"मुझे अन्दर जाने दो, ईश्वर ने मुझे कहा है, यह गिरजाघर मेरा ही है, इसमें हर कोई व्यक्ति जा सकता है।" परन्तु फिर भी लोगों ने उसे अन्दर नहीं जाने दिया। कहने लगे—"जाओ अपने भगवान से ही मिलो।"

तीसरी बार फिर वह व्यक्ति उधर से निकला। द्वार पर खड़े लोगों ने उससे पूछा—"कहो, अपने भगवान से मिल आये ?"

काला आदमी बोला—"हाँ, मिल आया, और उन्होंने मुझे कहा—"ऐ, मेरे प्यारे बच्चे ! उस गिर्जे के अन्दर जाने की कोशिश मत कर" वह गिर्जा मेरा अवश्य है, परन्तु उसमें स्वयं मेरा ही प्रवेश नहीं है, जब-जब मैं उसमें घुसने की कोशिश करता हूँ, तब-तब मुझे धक्के देकर पीछे खदेड़ दिया जाता है।

७८—*पार्वती का हठ*

छोटों को गुरुजनों की आज्ञा का पालन करना चाहिये। परन्तु कई बार छोटे अहंकारवश अथवा अपनी बुद्धि पर बहुत अधिक विश्वास करके बड़ों की आज्ञा की अवहेलना कर देते हैं

जिसका परिणाम उनके लिए ठीक नहीं होता। इस सम्बन्ध में एक विनोदपूर्ण कथा आती है।

एक दिन अन्नपूर्णा माँ पार्वती ने किसी व्रत का पारायण किया। व्रत पूरा होने के उपलक्ष में वे एक योग्य तपस्वी ब्राह्मण को भोजन कराना चाहती थीं। उन्होंने अगस्त्य ऋषि को इसके योग्य समझा और अपना विचार शिवजी के सम्मुख रखा। सुनते ही शिवजी बोले—"बाबा रे बाबा, यह तुमने कहाँ की सोची, उन्हें कभी निमंत्रण न देना, उन्हें तृप्त करना अत्यन्त दुःसाध्य है।" परन्तु पार्वती को इस छोटी-सी बात में शिवजी का समर्थन न मिलना पसन्द नहीं आया। उन्हें अपनी शक्ति पर विश्वास था। उन्होंने कहा—"महाराज, यह हो ही नहीं सकता कि मैं एक व्यक्ति का पेट न भर सकूं। मैं हजारों यक्ष, किन्नर की स्त्रियों को इस काम में लगा दूंगी। भला यह कैसे हो सकता है कि हम सब मिलकर भी अगस्त्यजी को संतुष्ट न कर सकें।" शिवजी ने एक बार पुनः समझाया कि इतने ऋषि, महर्षियों में से किसी अन्य को निमन्त्रण दे दो, परन्तु इतने पर भी जब शिवजी ने पार्वती को हठ छोड़ते नहीं देखा तब अनिच्छा से बोले—"अच्छा तो जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो, परन्तु मुझे इस सारी बात से अलग रखना। हाँ, तुम्हारा आग्रह है तो निमन्त्रण मैं अगस्त्यजी को अवश्य दे आऊंगा।" ऐसा कह कर शिवजी अगस्त्यजी को निमन्त्रण दे आये। अगस्त्यजी निश्चित दिन और समय पर आये और भोजन करने बैठे। भांति-भांति के व्यञ्जन पार्वती ने उन्हें परोसे। भोजन आरम्भ करते देर नहीं लगी कि चीजों का सफाया होने लगा। अगस्त्यजी के सामने जो भी कुछ परसा जाता वह पल भर में ही लोप हो जाता।

अगस्त्यजी किसी प्रकार का स्वाद तो लेते ही नहीं थे अतः जो कुछ मीठा-खट्टा, चरपरा उनके सामने आता उसे समाप्त करने में विलम्ब ही क्यों लगता। पार्वती भोजन परोसते-परोसते थक गयीं, परन्तु ऋषि के चेहरे से तो उनकी तृप्ति का कोई संकेत ही नहीं मिलता था। अब तो पार्वती घबरायी और शिवजी की बात का स्मरण होने लगा। यद्यपि शिवजी ने पहले ही मना कर रखा था, परन्तु पार्वती अपनी कठिनाई को हल करने जायें तो कहाँ। उन्हीं के पास वह गयीं। शिवजी बोले—"हमने तो पहले ही तुम्हें मना कर दिया था, परन्तु हठवश तुमने हमारी बात नहीं मानी। अब तो मुनिराज को भोजन पर से छल द्वारा ही उठाया जा सकता है और छल करना हमें आता नहीं। हाँ, विष्णु भगवान के पास जाता हूँ यदि वे यहाँ आने को तैयार हो जायें।" विष्णु भगवान के पास पहुँचे तो उन्होंने भी व्यंग किया-"पार्वती ने ऐसे समय पर हमें याद किया है, भोजन पर तो कभी बुलाती नहीं। अच्छा तो एक शर्त पर हम चलते हैं कि आप हमें भी भोजन करायें।" शिवजी भी विनोदी कम नहीं थे बोले—"अभी हम वचन नहीं दे सकते, पहले एक से निबट लें तब आगे की सोचेंगे।" विष्णु भगवान उस स्थान पर गये जहाँ अगस्त्यजी का भोजन अभी भी जारी था और उन्हीं के पास पत्तल परसवा कर बैठ गये। कुछ ही क्षण भोजन किया और उठ खड़े हुए। अब एक ही पंक्ति में बैठकर भोजन करने का यह नियम है कि पंक्ति से यदि एक भी उठ जाये तो शेष भी भोजन से उठ खड़े होते हैं। लाचार होकर अगस्त्यजी भी भोजन पर से उठ खड़े हुए परन्तु साथ ही उन्हें क्रोध आ गया, बोले—"यह आपने अच्छा नहीं किया, हमारी तृप्ति से पूर्व ही आपने हमें उठा दिया। अच्छा तो अब जल तो पी लेने दो।"

सो नहीं हो सकता महाराज, भोजन तो जैसे-तैसे जितना बन
ड़ा आपको कराया, परन्तु इतने जल की व्यवस्था इस समय
हम नहीं कर सकते। वह आगे फिर कभी आपको पिलायेंगे।
आगे चलकर भगवान ने अगस्त्यजी को पूरा समुद्र भर जल
पिलाया था यह कथा प्रसिद्ध है।

७९—ईश्वर अनुकूल तो सब अनुकूल

ईश्वर इच्छा से शाप भी वरदान में बदल जाता है
अर्जुन श्रीकृष्ण के अत्यन्त प्रिय सखा थे। अर्जुन के लिये ही
श्रीकृष्ण ने सारथित्व स्वीकार किया था। रणक्षेत्र में हुए अर्जुन
के मोह को श्रीकृष्ण ने अमर गीता का उपदेश देकर दूर किया।
अर्जुन उन्हें इतना प्रिय था कि अपने अत्यन्त दुर्लभ विराट्
स्वरूप का दर्शन कराया, जिसके सम्बन्ध में स्वयं भगवान ने
कहा था कि ऐसा दर्शन तेरे सिवाय पहले किसी ने नहीं किया।
अर्जुन अपने श्रेष्ठ गुणों के कारण ही भगवान को इतना प्रिय
था। अर्जुन का सर्वोच्च गुण था उसका पूर्ण इन्द्रियजीत होना।
अर्जुन कभी किसी भी परिस्थिति में अपना सन्तुलन नहीं खो
सकता था, काम, क्रोध, लोभ उस पर हावी नही हो सकते थे।

एक बार इन्द्र ने देवासुर संग्राम में अर्जुन से सहायता
की याचना की। अर्जुन अपने शौर्य के लिये प्रसिद्ध था। उसने
उत्साह एवं शूरवीरता से इन्द्र की सहायता की। परिणाम यह
हुआ कि असुर परास्त हो गये। इन्द्र ने विजय के उपलक्ष में
एक महान उत्सव किया। उत्सव में इन्द्र ने अर्जुन को बहुत
सम्मान के साथ आधा सिंहासन देकर अपने पास ही बिठाया।
उत्सव में अनेक अप्सराओं का मधुर संगीत एवं सुन्दर-सुन्दर

नृत्य हुए। उत्सव की समाप्ति पर बिदा के समय क्षण भर को अर्जुन की दृष्टि अप्सरा उर्वशी पर टिकी। इन्द्र की नज़र से यह बात छिपी नहीं रही और उनकी भोग-विलासी दृष्टि ने इसका एक ही अर्थ लिया कि अवश्य अर्जुन उर्वशी के सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया है। रात्रि हुई अर्जुन अपने शयन-कक्ष में विश्राम कर रहे थे। उन्हें नींद तो थी ही कहां। वे तो शैय्या पर पड़े-पड़े वन में भटकते अपने दुःखी वन्धुओं एवं द्रौपदी का चिन्तन कर रहे थे। सोच रहे थे कि कब सवेरा हो और मैं अपने वन्धुओं के पास पहुँच जाऊँ। यकायक इन्द्र द्वारा भेजी उर्वशी ने अर्जुन के शयनागार में प्रवेश किया। अर्जुन तो उसे देख दंग ही रह गये। वे उठे, उर्वशी को प्रणाम किया और ऐसे समय आने का कारण पूछा। उर्वशी बोली, "मैं इन्द्र की भेजी हुई आई हूँ।" उनके द्वारा भेजने का कारण भी बताया। अर्जुन बोले—"हे माता! इन्द्र ने मेरे प्रति ऐसा विचार मन में लाकर मेरे साथ बहुत अनुचित किया है। आपको भली प्रकार याद होगा, हमारे ही पुरखा पुरवा के साथ आपका प्रेम हुआ था। मन में उस समय यही स्मरण कर मैंने आप पर दृष्टि डाली थी और मन ही मन प्रणाम किया था। हमारे पुरखा से आपका प्रेम होने के कारण अवश्य ही आपको हमारी माता का दर्जा प्राप्त है। इन्द्र का अथवा आपका कुछ भी मेरे प्रति संदेह रहा हो, मुझे विश्वास है कि मेरे इस कथन से आपकी शंकाएँ दूर हो जायेंगी और इन्द्र का भी समाधान हो जायेगा। अब विलम्ब हो रहा है आप पधारें और आपके पुत्रवत् मेरे योग्य कोई भी सेवा हो वह अवश्य बतलायें।" उर्वशी उस समय कामासक्त थी। वह अर्जुन का ज्ञानोपदेश सुनने नहीं आयी थी। अतः अर्जुन की दलील का उस पर कुछ भी प्रभाव नहीं

पड़ा। परन्तु उधर अर्जुन अपनी आस्था पर हिमालय पर्वत के समान अडिग था। काम से क्रोध उत्पन्न होता है। उर्वशी को क्रोध आ गया। क्रोधवश उसने अर्जुन को शाप दिया— "जाओ, तुम आज से नपुंसक हो जाओ।"

इन्द्र को जब सारी बात मालूम हुई तो उन्हें महान दुःख हुआ कि मेरे कुसमय के सहायक अर्जुन को मेरे कारण ऐसी दुर्दशा प्राप्त हुई। उन्होंने उर्वशी को प्रसन्न करके व अपनी योग शक्ति द्वारा अर्जुन के नपुंसकत्व की अवधि घटाकर एक वर्ष की कर दी। यह शाप अर्जुन के लिए वरदान सिद्ध हुआ, क्योंकि इसी काल में पांडवों को एक वर्ष का अज्ञातवास करना पड़ा था और अर्जुन ने कुमारी उत्तरा को नृत्य तथा गायन विद्या सिखाने का काम अपने ऊपर लिया था। नपुंसकत्व के कारण उनको यह काम देने में राजा को भी संकोच नहीं हुआ और निर्विकारी होकर अर्जुन दक्षता से यह कार्य सम्पन्न कर सके।

ईश्वर अनुकूल हों तो किसी का दिया अभिशाप भी वरदान में बदल जाता है।

८०—*आलसी को बहाने बहुत*

आलस्य को सभी धर्मों ने मनुष्य का एक महान शत्रु माना है। यह ऐसा बाधक है जिसे दूर किये बिना कोई भी कार्य सफलतापूर्वक नहीं हो सकता। चाहे कोई विद्यार्थी हो, वकील हो, इन्जीनियर हो, मजदूर हो अथवा प्रभु प्राप्ति में लगा प्रेमी भक्त हो, आलस्य को जीत कर ही सब अपने-अपने मार्ग में प्रगति कर सकते हैं।

एक गांव में एक आदमी था। उस गांव के सभी आदमी मिल कर गाँव की सुख-सुविधा बढ़ाने के लिए जी तोड़ कर श्रमदान कर रहे थे। परन्तु वह आदमी चुपचाप पेड़ के नीचे अजीब तरह से हाथ पर हाथ धरे बैठा था। देखने में वह वृद्ध और रोगी भी नहीं लग रहा था। लोगों को आश्चर्य हो रहा था कि यह स्वस्थ नौजवान मनुष्य, उसी गांव का रहने वाला होकर भी, सब के साथ श्रम में हाथ क्यों नहीं बटा रहा है। आखिर एक व्यक्ति उसके पास गया और पूछा—"आप ऐसे क्यों बैठे हैं, आपकी तबीयत तो ठीक है? उठिये आप भी थोड़ा हमारे काम में हाथ बटाइये।" वह आदमी बोला—"मैं श्रम नहीं कर सकता हूं। मैं तीन दिन का भूखा हूं।" "अरे आपने अब तक हमें क्यों नहीं बताया, क्या हम यह सहन कर सकते हैं कि एक हमारे ही गाँव का आदमी तीन दिन से भूखा रहे और हम सब खाये-पीये हों? यह तो हमारे लिए बड़े शर्म और धिक्कार की बात है।" यह कह कर व्यक्ति उस आदमी को अपने घर ले गया और उसे भर पेट भोजन कराकर संतुष्ट किया। थोड़ी देर बाद क्या देखते हैं कि वही आदमी पुनः हाथ पर हाथ धरे अपने उसी पुराने स्थान पर बैठा है। लोगों ने उससे पूछा—"भाई, अब क्या बात है? अब तो आप भूखे नहीं हैं फिर आप हमारे साथ मिलकर श्रमदान में भाग क्यों नहीं लेते?" तो तुरन्त ही वह आदमी बोला—"अरे, क्या खाना खाने के बाद भी कोई काम होता है, अब तो मैं विश्राम करूंगा।"

८१—*पश्चाताप की महिमा*

प्रत्येक व्यक्ति से असावधानी में एक न एक भूल हो जाया करती है। भूल न हो इसका सर्वश्रेष्ठ उपाय यह है कि

मनुष्य सदा सावधान एवं जागरूक बना रहे, प्रमाद से बचे। इतना करने पर भी अपनी दुर्बलतावश मनुष्य से कभी न कभी कोई भूल हो ही जाती है। समय का प्रवाह चलता ही रहता है। गया समय फिर लौटाया नहीं जा सकता। एक बार जो भूल हो गई उसका मनुष्य क्या करे ? अंग्रेजी में कहावत है "डन केन्नोट बी अनडन" अर्थात् किये का अनकिया होना असम्भव है। ऐसे अवसर पर हृदय से किया गया पश्चाताप ही एकमात्र ऐसा गंगाजल है जो मनुष्य के हृदय को शुद्ध करके उसे निष्पाप बना सकता है। वास्तविक पश्चाताप में यह बात तो निहित होनी ही चाहिये कि मनुष्य भविष्य में भरसक ऐसी चेष्टा करेगा कि वैसी भूल फिर कभी न हो।

इस सम्बन्ध में एक मुसलमान संत की कथा आती है। बड़े भक्त थे वे संत। अपने धर्म के आदेशानुसार वे नियमित रूप से दिन में पाँच बार नमाज़ पढ़ते थे। एक दिन ऐसा हुआ कि वे बहुत थक गये और गफ़लत में ही उन्हें यकायक गहरी नींद आ गई। थोड़ी ही देर सोये होंगे कि उन्हें किसी ने जोर से हिलाकर जगा दिया और उनसे कहा—"आज आप सो कैसे गये अभी नमाज़ तो आपकी बाकी रह गई है।" संत हड़बड़ा कर उठे, बोले—"वाह, यह तो काम आपने बहुत अच्छा किया जो मुझे जगा दिया। मैं आपका जितना उपकार मानूं कम है वरना मुझे आज की भूल का सदा ही गम बना रहता। भला मैं पूछ सकता हूँ कि आपका नाम क्या है ?" "मेरा नाम शैतान है," उस जगाने वाले ने कहा। संत बोले—"भला आपका नाम शैतान कैसे हो सकता है। शैतान का काम तो भक्त को भगवान से दूर ले जाने का होता है। आपने तो ठीक इसका उल्टा किया है इसलिये आपकी बात पर विश्वास नहीं हो रहा है।"

वह बोला—"नहीं, आप विश्वास कीजिये मेरा नाम शैतान ही है, और मैंने आपके ऊपर कोई उपकार नहीं किया है। मैंने तो तुम्हें इसलिये जगाया कि न जगाने से कहीं भगवान तुम्हारे ऊपर अधिक प्रसन्न न हो जायें।" "वाह, यह भी कहीं हो सकता है कि मैं तो भगवान की प्रार्थना भूल जाऊं और वे मुझ पर अधिक प्रसन्न हो जायें" संत बोले।

"बात यों है" शैतान ने कहा। "तुम से एक बार पहले भी ऐसी भूल हुई थी कि अधिक थक जाने से तुम्हें नींद आ गई थी और प्रार्थना रह गई थी। दूसरे दिन जब तुम्हें होश हुआ तब तुम अपनी भूल पर बहुत पछताये और रो-रो कर भगवान से आगे से ऐसी भूल न करने की माफी मांगी थी। तुम्हारी उस बात से भगवान इतने अधिक प्रसन्न हुए कि तुम्हें पहले से भी अधिक प्यार करने लगे। इसी कारण अब कि बार जब तुम्हें नींद लगी तो मैंने तुम्हें जगा दिया कि कहीं इस बार भी ऐसा न हो कि तुम पश्चाताप करके भगवान के पहले से भी अधिक प्यारे बन जाओ।"

सच है, हृदय से किये गये पश्चाताप में ऐसी ही शक्ति है।

८२—सुख किसमें, दुःख किसमें

एक धनी गृहस्थ ने गरीब लोगों के लिए एक धर्मार्थ औषधालय खुलवाने में पाँच हजार रुपये का दान दिया। दान देकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। दूसरे ही दिन अकस्मात् इसी धनी गृहस्थ का एक सौ रुपये का नोट खो गया। बहुत खोज-बीन और पूछताछ करने पर भी वह नोट नहीं मिला। फिर भी

धनी नोट ढूँढता ही रहा। कई दिन बीत गये नोट के खोये को फिर भी धनी ने उसके मिल जाने की आशा नहीं छोड़ी और सोच-सोच कर वह नयी-नयी जगह ढूँढता रहा कि शायद अभी भी नोट मिल जाये। जिस दिन से नोट खोया तभी से धनी कुछ चिन्तित और उदास दिखाई पड़ने लगा। अब वह पहले की भांति हँसकर सब से बात नहीं करता था। तभी उसकी भेंट उन महात्मा से हुई जिनकी प्रेरणा से उसने औषधालय के निर्माण में पांच हजार का दान दिया था। महात्मा को सारी बात मालूम होने पर वे धनी को सम्बोधित करते हुए बोले—"तुम्हारे इस दुःखी होने में जीवन का एक बड़ा सिद्धान्त समाया हुआ है। धन की बड़ी से बड़ी रकम जहां हम खुशी से दे देते हैं वहां उसके कारण हमें दुःख न होकर उल्टे खुशी होती है, परन्तु किसी अन्य कारण से जब हमारे से अपने ही धन का वियोग होता है तब हमें अत्यन्त दुःख होता है। तुम्हें पांच हजार रुपये दे देने से खुशी हुई, परन्तु केवल मात्र एक सौ रुपये खोने से दुःख हुआ। धन का वियोग दोनों ही अवस्थाओं में था, परन्तु एक में तुम्हारी अपनी खुशी थी और दूसरे में तुम्हारी अनिच्छा। काल बीत रहा है, मृत्यु हमारी दिन-दिन निकट आ रही है। एक दिन अनिच्छा से सब कुछ संसार में छोड़कर कूच करना ही पड़ेगा, तो क्यों न उसके पूर्व ही अपनी स्वेच्छा और खुशी से धन का अच्छे कामों के लिये त्याग कर यहीं इस धरती पर सुख और संतोष प्राप्त करें। जबरन त्याग में फिर भला सुख और संतोष कहां से प्राप्त होंगे?"

महात्मा के ऐसे वचन सुनकर उस गृहस्थ के न केवल चिन्ता और शोक दूर हो गये, बल्कि आगे से दान में उसकी और प्रवृत्ति बढ़ गयी।

८३—नकल में भी अक़ल चाहिए

एक महात्मा ने अपने आश्रम में एक बिल्ली पाल रखी थी। उनका प्रतिदिन प्रवचन हुआ करता था और बहुत से श्रोता आते थे। महात्माजी जब-जब प्रवचन करते उससे पूर्व एक टोकरी लाते और बिल्ली को उसमें दबा देते थे। सुनने वालों में एक विशेष जिज्ञासु भक्त भी थे। थोड़े समय पश्चात् वे जिज्ञासु भक्त भी अपने आश्रम में प्रवचन करने लगे। उन्होंने कोई बिल्ली तो पाल नहीं रखी थी। परन्तु फिर भी प्रवचन से पूर्व किसी न किसी से बिल्ली मांग लाते और प्रवचन प्रारम्भ करने से पूर्व उस बिल्ली को एक टोकरे के नीचे दबा देते। उनका यह क्रम नित्य चलता था। एक दिन कुछ लोग पूछ ही बैठे—"महाराज, आप ऐसा क्यों करते हैं ? किसी और समय भी नहीं, जब प्रवचन का समय होता है तभी आप बिल्ली को लाकर बन्द करते हैं। क्या प्रवचन और बिल्ली इन दोनों का आपस में कोई सम्बन्ध है ?" महात्मा जी बोले—"यह तो मुझे कुछ मालूम नहीं पर बात यह है कि हमने हमारे गुरुजी को ऐसा करते देखा है। वे प्रवचन से पूर्व सदा बिल्ली को टोकरी के नीचे दबा दिया करते हैं।" "तो आपने गुरुजी से ऐसा करने का कारण नहीं पूछा ?" भक्त लोग बोले। "कारण तो भाई नहीं पूछा, चलो अब चलकर पूछ लेते हैं।" उत्तर मिला।

जिज्ञासु मण्डली गुरुजी के पास पहुँची और पूछा—"महाराज, बताइये आप प्रवचन आरम्भ करने से पूर्व बिल्ली को टोकरी के नीचे क्यों दबाते हैं ?"

गुरुजी बोले—"भाई, आप लोग इतनी हैरानी में क्यों पड़े हैं। बात सीधी-सादी है। कारण यह है कि जब मैं प्रवचन

करने लग जाऊँ और आपका ध्यान सुनने में लग जाय, तब कहीं बिल्ली कुछ उपद्रव करके हमारे बीच विघ्न डालने लगे, तो उसे उस समय कौन सम्भाले। बस यही कारण है कि मैं उसे पहले से ही बन्द कर देता हूँ।"

भक्त लोगों के बात समझ में आई। उन्हें हैरानी हुई कि इतनी मोटी बात हम अपने-आप ही क्यों नहीं समझ सके। ठीक ही कहा है कि नकल में भी थोड़ी अकल तो चाहिये ही। एक छात्र ने तो नकल में यहाँ तक हद कर दी कि सब कुछ नकल करते-करते अन्त में उसने पहले व्यक्ति के हस्ताक्षर की भी नकल कर डाली।

८४—क्या हम मरने में स्वतंत्र हैं ?

जिसकी ईश्वर रक्षा करता है उसे कौन मार सकता है। इस संबंध में जो कथा प्रसिद्ध है उसे सभी जानते हैं कि किस प्रकार एक शिकारी और दूसरा बाज एक पेड़ पर बैठी चिड़िया को मार डालना चाह रहे थे, परन्तु स्वयं मारे गये (देखिये कथा २७)।

ऐसी ही एक सच्ची घटना एक पश्चिम बर्लिन में रहने वाले श्री कांस्टेन लेंग नामक व्यक्ति के साथ घटित हुई। लेंग की अवस्था ४६ वर्ष की थी। उसे संसार में किसी प्रकार की कमी नहीं थी, लाखों रुपये, बढ़िया मकान, सुन्दर पत्नी, दो प्यारे बच्चे व कई दुकानें थीं। यह सब कुछ होते हुए भी उनके मन को शान्ति नहीं थी। जब मन का तनाव बहुत बढ़ गया तब उन्होंने ऐसे जीवन का अन्त करने का निश्चय कर

लिया। आत्महत्या करने के लिए पहले लेंग ने ३५ फुट लम्बी नाइलोन की मज़बूत रस्सी खरीदी। फिर एक रिवाल्वर और उसके बाद नींद लाने वाली चालीस गोलियों का प्रबन्ध किया।

एक रात्रि को वह सब चीजें लेकर बर्लिन के बीच बहने वाली नहर के पुल पर पहुँच गया। झटपट पुल के रेलिंग से रस्सी बांधी। जेब से पानी की बोतल और नींद की गोलियां निकालीं और एक बारगी ही शीघ्रता से उन सब को निगल गया।

रस्सी का फंदा बनाया। रस्सी से लटक जाने पर प्राण निकलने में कुछ देर हो इसलिये रिवाल्वर तैयार किया। इधर उधर निगाह दौड़ाई कि कोई देख तो नहीं रहा है, तो देखा कि गश्त पर तैनात एक सिपाही खड़ा है।

सिपाही देख न ले इसलिये लेंग ने जल्दी से गले में फंदा डाला और हाथ में रिवाल्वर लेकर कूद पड़ा और रस्सी में बंधा झूलने लगा। उधर उसने रिवाल्वर भी दाग दिया। सब उपाय तो कर लिये परन्तु भगवान को यह सब मंजूर नहीं था। रिवाल्वर तो दागा परन्तु निशाना चूक गया। रिवाल्वर उसके सिर पर न लग कर रस्सी के लगा। रस्सी कट गई और लेंग नहर के बर्फीले पानी में गिर पड़े।

लेंग को तैरना नहीं आता था और वह डूबने लगा। पानी उसके पेट में भर गया, फलस्वरूप उसे कै हो गई और नींद की तमाम गोलियां बाहर निकल पड़ीं।

उसी समय अकस्मात् दो नाविक उधर आ पहुँचे और उन्होंने सर्दी से अकड़े लेंग को पानी से बाहर निकाला। उनका उपचार किया गया और कुछ समय बेहोश रहने के पश्चात् वे ठीक हो गये।

ईश्वर की इच्छा के बिना न केवल कोई दूसरे को नहीं मार सकता बल्कि स्वयं भी नहीं मर सकता।

८५—हमारा बन्धन कृत्रिम है

एक धोबी था। उसके पास अपने कारोबार चलाने के लिए कई गधे थे। जब शाम होती तब वह एक ही रस्सी से सारे गधों को बांध दिया करता था। एक बार की बात है कि सब गधों को उस एक रस्सी से बांधते-बांधते एक गधे को बांधने के लिए कुछ रस्सी कम पड़ गयी। अब रात्रि के समय वह रस्सी लेने कहां जाये? परन्तु धोबी चतुर था। उसने गधे की गर्दन के चारों ओर सदा की भांति हाथ घुमाया मानों वह उसे बांध रहा हो। चूंकि गधे को प्रतिदिन बंधने की आदत थी अतः उसे विश्वास हो गया कि आज भी वह बांधा गया है। और सचमुच ही वह अपने स्थान से जरा भी इधर-उधर नहीं हटा। सवेरे गधे को खोलने का समय जब हुआ तब भी धोबी ने अपना हाथ गधे की गर्दन के चारों ओर इस प्रकार घुमाया मानो वह उसके बंधन खोल रहा हो। धोबी के उल्टा हाथ घुमाते ही गधा अपने स्थान से हिलने लगा। उसको बंधन छूट जाने का विश्वास हो गया।

उपरोक्त गधे के ही समान व्यक्ति ने भी संसार में आकर अपने को अनेक कल्पनाओं, मिथ्या भ्रमों और ऐसे ही जंजालों से झूठ-मूठ बंधा मान लिया है। विचार, सत्संग और ज्ञान द्वारा जब उसे विश्वास हो जायेगा और इतनी बुद्धि उत्पन्न हो जायेगी कि उसके बंधन उसके ही खड़े किये हुए हैं, वह सचमुच में बंधा नहीं है, उसी दिन से वह मुक्त है। परन्तु इस प्रकार की सद्बुद्धि का उदय तभी होगा जब हम अपने मन-रूपी आकाश को निर्मल बनायेंगे, चित्त-शुद्धि करेंगे अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह मात्सर्य आदि शत्रुओं को अपने अन्दर से निकाल फेकेंगे। इसके लियें सज्जनों की संगति, सद्ग्रन्थों का अध्ययन करना होगा और सबसे बड़ी बात यह कि व्यवहार में सत्य और सदाचार का निर्भयता से पालन करना होगा।

८६—*मन के जीते जीत*

एक नये-नये जमाई बहुत आग्रह का निमंत्रण पाकर अपने ससुराल जा रहे थे। निमन्त्रण की खबर किसी प्रकार एक शैतान व्यक्ति को भी लग गयी। रेल में जब जमाई सवार हुआ तब वह भी जमाई के गन्तव्य स्थान का पता करके उसके साथ ही हो लिया। मार्ग में उसने जमाई पर पूरी निगाह रखी और जब जमाई अपने स्थान पर उतरे तब वह भी उनके साथ ही हो लिया। स्टेशन पर लेने आने वाले लोगों ने साथ होने के कारण उसे जमाई का ही एक मित्र समझा और जमाई के साथ ही ले जाकर पूरे सम्मान के साथ दोनों को अपने घर पर एक ही स्थान पर टिका लिया। अब तो दिल खोल कर जो खातिर जमाई की होती वही उस व्यक्ति की भी होती रही। ससुराल

वालों ने तो व्यक्ति को जमाई का मित्र समझ कर विशेष पूछ-ताछ की आवश्यकता नहीं समझी। उधर जमाई ने मान लिया था कि उसके ससुराल का ही वह व्यक्ति कोई सम्बन्धी अथवा मित्र है और अपने मस्त हाल में उसने भी आगे पूछताछ नहीं की। इस प्रकार उस व्यक्ति की तो मौज ही बन गई।

दुष्ट बुद्धि मनुष्य अपनी दुष्टता नहीं छोड़ सकता। वह व्यक्ति लोभवश अब वहां रखी वस्तुओं को एक-एक कर उड़ाने लगा। घर में से प्रतिदिन एक न एक चीज गायब होने लगी। घर के लोगों को समझ में ही आता था कि आखिर चीजें जाती कहां हैं, किस व्यक्ति का यह काम है। ससुराल के लोगों को उस व्यक्ति पर कुछ-कुछ सन्देह भी होने लगा था, परन्तु जमाई के बुरा मान जाने के भय से खामोश रहे। बुराई सदा नहीं चल सकती। एक न एक दिन वह प्रकट हो ही जाती है और तभी उसका अन्त हो जाता है। दैवयोग से जमाई और उसकी ससुराल वालों में इस सम्बन्ध में एक दिन बात हो ही गयी। तब जमाई ने उस व्यक्ति का परिचय पूछा। ससुराल वालों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उन्हें पता चला कि वह व्यक्ति जमाई का मित्र नहीं है। इधर जमाई को भी पता लग गया कि उस व्यक्ति का ससुराल वालों से कोई सम्बन्ध नहीं है।

जमाई और ससुराल वालों की बात वह व्यक्ति एक आड़ पाकर सुन रहा था। जैसे ही उसकी बातें सुनी वह घर से भाग खड़ा हुआ। उसके जाने के पश्चात् से जमाई और घर वाले आनन्दपूर्वक रहने लगे।

जमाई और कोई नहीं, इस शरीर में रहने वाला मन है। मन में दोष होना हमारे दुःखों की जड़ है। निर्दोष, निष्पाप

मन सब सुखों का मूल है। मन के लोप हो जाने से अर्थात् उसकी चंचलता दूर हो जाने से हमारे सारे उपद्रव समाप्त हो जाते हैं. शान्ति और आनन्द की प्राप्ति हो जाती है। इस मन पर विजय पाना हमारा मुख्य कर्त्तव्य है। इसके दो उपाय हैं, (१) अभ्यास अर्थात् सतत् अच्छी बातों में लगा रहना और (२) वैराग्य अर्थात् एक-एक करके समस्त बुराई का त्याग। ऐसा करते हुए हमें आगे बढ़ना है, ऐसा श्रीकृष्ण ने गीता में हमें सिखाया है।

८७—अपने भेष की लाज अपने हाथ में

झूठे स्वांग बनाने वाले दुष्ट व्यक्ति के मन में भी बहुत बार अपने स्वांग के प्रति आदर-भाव उत्पन्न हो जाता है, और उसे हीन कार्य करने में संकोच और लज्जा का अनुभव होता है। उसका मन गवाही नहीं देता कि ऊँचे भेष को छोटे कार्य द्वारा कलंकित किया जाये।

तपस्वी फजल अयाज फकीर होने से पूर्व एक खौफनाक डाकू थे। वे घने जंगल में फकीरी लिबास पहन कर रहते और उनके साथी रास्तों पर चलते कारवां लूटा करते। एक दिन एक सौदागर उस जंगल से गुजरा। उसे जंगल में डाकुओं की आशंका हुई। अतः सामने एक फकीर की कुटी देख वह उधर पहुँचा। उस समय लुटेरा फजल अयाज सुमिरनी (माला) फेरता बैठा था। सौदागर ने कहा—"फकीर बाबा, आप मेरी इस मोहरों की थैली को रख लें। लौटते वक्त मैं इसे ले लूंगा।" फजल ने एक तरफ इशारा करते हुए कहा—"थैली उधर रख

दो।" सौदागर ने थैली रख दी और अपने कारवाँ में शरीक हो गया।

घने जंगल में लुटेरों ने कारवां पर हमला किया और माल-असबाब लूटकर चलते बने। सौदागर को अपना माल पहले ही से फकीर के पास रख आने से बड़ी प्रसन्नता हुई कि कम से कम उसका माल तो सुरक्षित है और वह लुटने से बच गया। जब सौदागर अपना माल वापस लेने फकीर की झोंपड़ी में गया तो वहां जो कुछ देखा उससे वह अचंभित हो गया। डाकू जो अभी-अभी लूट में भाग ले रहे थे वे ही सब वहां पर इकट्ठे होकर लूट के माल का बँटवारा कर रहे थे। वह फकीर तो लुटेरों में से ही एक जान पड़ा। सौदागर अपनी बेवकूफी पर और झटपट किसी पर विश्वास कर लेने की अपनी गलती पर पछताने लगा। पर अब वह कर ही क्या सकता था। मारे डर के वह झोंपड़ी से उल्टे पाँव लौटने लगा। तभी फज़ल की आवाज़ आई—"यह क्या बात है! खाली हाथ क्यों लौटे जा रहे हो? देखो, वह सामने तुम्हारी थैली रखी है, गिन कर देख लो, पूरी मोहरें हैं या नहीं, और उसे ले जाओ।" सौदागर को और भी अधिक आश्चर्य हुआ। उसने थैले में से निकाल कर मोहरें गिनीं तो जैसी की तैसी पूरी थीं। उसने थैला उठाया और फकीर को प्रणाम करके चलता हुआ।

जब सौदागर थैली लेकर चला गया तब साथियों ने सरदार अयाज़ को हाथ में आया इतना माल छोड़ देने पर बहुत बुरा-भला कहा।

फज़ल अयाज़ बोला—"बात यह है कि सौदागर ने मुझे

फकीर समझ कर इतना यकीन किया था। अब मेरे लिबास की लाज रखना मेरा कर्त्तव्य था।

और सचमुच ही उस दिन से अयाज़ सच्चा फकीर बन गया।

८८—*अपनी-अपनी योग्यता*

धर्म पर चलने के मार्ग अलग-अलग हो सकते हैं यद्यपि मूल-भूत बातों में अन्तर नहीं होता। जो मार्ग एक के लिये सहज है वही दूसरे के लिये अत्यन्त दुष्कर हो सकता है। मुख्य बात है व्यक्ति के अन्दर धर्म, नैतिकता और सदाचार के प्रति सच्ची श्रद्धा। मार्ग अलग-अलग होने का मुख्य कारण है हमारे मनके पूर्व संचित संस्कार अर्थात् अब तक के किये गये कर्मों का चित्त पर प्रभाव। यदि एक मनुष्य दूसरे के मार्ग पर केवल सुविधा असुविधा का विचार करके उसका अनुकरण करने लगे तो वह दूसरे के धर्म का पालन तो कर नहीं सकेगा उल्टे वह अपने पथ से भी गिर जायेगा।

एक बार एक गृहस्थ एक साधु के पास गये और पूछा—"क्या मोक्ष-प्राप्ति के लिये घर-बार छोड़ना आवश्यक है?" साधु ने कहा—"नहीं तो, कौन कहता है? देखो जनक जैसों ने जब राजमहल के अन्दर रह कर ही मोक्ष प्राप्त कर लिया, तो फिर तुम्हें भला घर छोड़ने की क्या आवश्यकता है?"

इसके पश्चात् एक दूसरे गृहस्थ ने आकर उसी साधु से पूछा—"स्वामीजी, क्या घर-बार छोड़े बिना मोक्ष मिल

सकता है ?" साधु ने कहा—"कौन कहता है कि मिल सकता है ? घर रह कर संत-मेंत में ही यदि मोक्ष मिल जाता होता तो शुक जैसों ने जो घर-वार छोड़ा तो क्या वे मूर्ख थे ?"

वाद में उन दोनों जिज्ञासुओं की आपस में भेंट हुई तो वड़ा भगड़ा मचा। एक कहने लगा—"साधु ने घर-वार छोड़ने के लिए कहा है।" दूसरे ने कहा—"नहीं, उन्होंने कहा है कि घर-वार छोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है।"

जव वात वढ़ गई तो दोनों साधु के पास आये। साधु ने कहा—"तुम दोनों ही ठीक कह रहे हो, जैसी जिसकी भावना वैसा ही उसका मार्ग, और जिसका जैसा प्रश्न वैसा ही उसका उत्तर। घर छोड़ने की जरूरत है यह भी सत्य है और जरूरत नहीं है यह भी सत्य है। तुम्हारे प्रश्नों में ही तुम्हारे उत्तर विद्यमान थे। प्रत्येक को अपनी योग्यता के अनुसार ही मार्ग पकड़ना पड़ता है। उस मार्ग पर चलते-चलते आगे का मार्ग स्वयं प्रकाशित हो जाता है। अव यदि एक मनुष्य अपनी मनोवृत्ति एवं पूर्व संस्कार के विरुद्ध दूसरे के मार्ग पर चलने का हठ करने लगे तो वह उसका दुस्साहस होगा और वह पथ-भ्रष्ट हो जायेगा। उसकी उन्नति नहीं होगी।" साधु की वात सुनकर जिज्ञासु शान्त हो गये।

८९—कैसे उठाकर ले जाओगे ?

संसार में मनुष्य खाली हाथ आता है और खाली हाथ ही जाता है। सिकन्दर और हिटलर जैसे आक्रमणकारी जिन्होंने अनेक देश हड़प लिये थे वे भी मर कर खाली हाथ ही गये।

हां, यदि मनुष्य पूर्व जन्मों में किये शुभ कर्मों के संस्कार अपने साथ लेकर जन्मे और उसकी प्रेरणा से वह अपने इस जीवन में शुभ कृत्य करे तो निस्सन्देह वह आगे जीवन के लिए एक ऐसी अमूल्य पूंजी अपने साथ ले जाता है जो उसे ईश्वर-प्राप्ति-रूप अन्तिम लक्ष्य की ओर बढ़ने में बराबर सहायक होती है। ऐसा सोच कर हम विवेक से काम लें और अल्प मनुष्य जीवन में एक भी ऐसा कार्य न करें जो आत्मा को नीचे गिराये।

एक ज़मींदार था। उसने निर्दयता से एक बेचारी गरीब बुढ़िया का खेत अन्यायपूर्वक हड़प लिया। एक दिन वह उसी खेत में टहल रहा था कि वहां बुढ़िया आयी और ज़मींदार से कहने लगी—"क्या आपके खेत में से एक बोरा मिट्टी ले जा सकती हूं?"

जमींदार ने तरस खाकर ऐसे अनुमति दे दी मानो वह उसके ऊपर बड़ा उपकार कर रहा हो।

बुढ़िया ने बोरा भरा और तब उसने जमींदार से कहा—"क्या कृपया आप इसे उठाकर मेरे सिर पर रख देंगे?"

जमींदार ने बोरा उठाने की कोशिश की, परन्तु वह उसे उठा नहीं पाया।

तब बुढ़िया बोली—"आप एक बोरा मिट्टी भी उठा नहीं पा रहे हो, और इस खेत में तो लाखों बोरे मिट्टी के हैं, उन्हें कैसे उठाकर ले जाओगे?"

ज़मींदार बुढ़िया का उत्तर सुनकर समझा, लज्जित हुआ और उसने बुढ़िया का खेत उसी समय उसे लौटा दिया।

६०—*निंब कां पियावा*

हिन्दी में कहावत है—"जो गुड़ दीन्हे ते मरे तो माहुर काहे देय" अर्थात् यदि रोगी का रोग गुड़ देने से मर जाता हो तो फिर रोगी को विष का सेवन क्यों कराया जाय ? ऐसी ही कहावत मराठी में है—"रोग जाये दूधे साकरे तरी निंब कां पियाव" अर्थात् यदि रोग दूध शक्कर देने से जाता हो तो फिर कड़वा नीम घोंट कर क्यों पिलाया जाये ।"

एक दिन श्री रामजी के दरबार में एक कुत्ता आया और रोता हुआ मनुष्य की वाणी में कहने लगा—"महाराज, तीर्थ सिद्धि नामक ब्राह्मण ने बिना ही अपराध लाठी से मेरा सिर फोड़ दिया है, अतः आप मेरा न्याय कीजिये ।"

भगवान राम ने ब्राह्मण को बुलाया और उससे पूछा—"तुमने निरपराध कुत्ते के सिर पर लाठी क्यों मारी ?"

ब्राह्मण ने कहा—"मैं भीख मांगता फिर रहा था कि यह कुत्ता रास्ते में आ गया। मैंने इसे हटाया। जब यह नहीं हटा तो मैंने इसके सिर पर लाठी मार दी, इसके बिना और करता भी क्या ?" भगवान राम को लगा कि कुत्ते का अपराध छोटा है और ब्राह्मण ने बदले में दण्ड बहुत अधिक दिया है। ताड़ना अपराध के अनुसार ही होनी चाहिये। उधर ब्राह्मण होने के कारण उसे अदण्डनीय समझ कर भगवान बड़े असमंजस में पड़ गये और विचार करने लगे।

इतने में कुत्ता बोल उठा—"मैं ब्राह्मण के लिए दण्ड आपको सुझाता हूं। इन्हें आप कालंजर का महन्त बना दीजिये।"

उपस्थित लोग ऐसे दण्ड के विधान पर हँसने लगे। उन्हें तो चिन्ता हो रही थी कि न जाने कुत्ता ब्राह्मण को कौनसा कठोर दण्ड दिलाने का भगवान राम से अनुरोध करेगा पर कुत्ते ने जो कुछ सुझाया वह तो मानो दण्ड के स्थान पर ब्राह्मण को एक पुरस्कार ही देना था।

कुत्ता बोला—"जो कुछ मैंने कहा वह बात हँसने योग्य नहीं है। मैं भी पूर्व जन्म में एक महन्त था। महन्त होने के कारण मेरे पास अनेक प्रकार की भोजन-सामग्री आती थी। मैं विवेक से काम नहीं ले सका और भक्ष्या-भक्ष्य खाने से मेरी यह दुर्गति हुई कि कुत्ता बना। अतः महंत होना बड़ी बुरी बात है।"

भगवान राम ने कुत्ते के कथन को स्वीकार किया और ब्राह्मण को कालंजर का महन्त बना दिया।

इस प्रकार भगवान राम ने दण्ड भी दिया और ब्राह्मण के उद्धार का मार्ग भी खुला रखा। कुत्ते का पूर्वजन्म का अनुभव का लाभ उठा कर यदि ब्राह्मण विवेक-बुद्धि न खोये तो महन्त होने पर भी वह धर्म के पथ पर निरन्तर चल कर अपना पतन न करके उद्धार कर सकता है।

९१—*निर्भय कौन ?*

ज्ञानी और भक्त दोनों ही ईश्वर-परायण होते हैं, परन्तु ज्ञानी को अपना बल होता है तो भक्त को भगवान का। ज्ञानी को अपने संयम पर विश्वास है तो भक्त को भगवान की शरणागति पर। ज्ञानी भगवान की अँगुली पकड़ कर चलता है तो भक्त की अँगुली भगवान स्वयं पकड़ते हैं।

एक पिता अपने दो छोटे बच्चों को लिए खेत में ले जा रहा था। पिता ने एक बच्चे को बाहु में उठा रखा था और दूसरा पिता की अँगुली पकड़े-पकड़े पैदल चल रहा था। थोड़ी दूर जाने पर बच्चों ने एक पतंग उड़ते देखा। पतंग बच्चों के लिये अत्यन्त मनमोहक वस्तु होती है। दोनों बच्चे प्रसन्नता में भर कर एक साथ ही बोल उठे—"पिताजी-पिताजी, देखिये पतंग उड़ रहा है और हाथ ऊपर उठाकर दोनों हाथों से तालियां बजाने लगे। अब जिस बच्चे ने पिता की अँगुली पकड़ रखी थी वह अँगुली छोड़ते ही तुरन्त लुढ़क पड़ा, परन्तु जिस बच्चे को पिता ने गोद में ले रखा था वह पहले की भांति मस्त और प्रसन्न था।

गोद का बच्चा हरि शरणागत भक्त के समान है, उसका उत्तरदायित्व भगवान पर है। दूसरा बच्चा ज्ञानी के समान है जिसकी शक्ति का आधार वह स्वयं है। यह आधार कौन जाने कब डिग जाये ?

६२—सद्गुणों की जननी नम्रता

कोई भी ऊँचे ध्येय की प्राप्ति के लिए मनुष्य में नम्रता एक अनिवार्य गुण है। गीता के सोलहवें अध्याय में दैवी सम्पद का वर्णन करते हुए जहां श्रीकृष्ण ने अभय गुण को प्रथम स्थान दिया है, मानो वह सद्गुण रूपी सेना का सेनापति हो, तो सबसे पीछे का स्थान दिया है 'नम्रता' को। सद्गुणों के सबसे आगे यदि 'अभय' खम ठोक कर खड़ा है तो पीछे से 'नम्रता' रक्षा कर रही है। गीता के इस अध्याय में कुल छब्बीस गुण बताये। इनमें से पच्चीस गुण प्राप्त हो जायें, परन्तु मनुष्य

में अहंकार रह जाये तो पीछे से चोर दरवाज़े से सारी कमाई खो जाने का डर है। इसीलिये पीछे 'नम्रता' नामक सद्‌गुण रखा गया है। यदि यह न हो तो जय कब पराजय में परिणत हो जाय इसका कुछ पता भी नहीं चले।

एक बार एक व्यक्ति बड़ी नम्रता का प्रदर्शन करते हुए एक साधु के पास पहुँचा और बोला—"मैं एक बहुत ही तुच्छ व्यक्ति हूँ मेरा कैसे उद्धार हो सकता है?" किसी मनुष्य के भाव में कितनी सच्चाई है यह उसकी भाषा से अनुभवी पहचान जाते हैं। साधु व्यक्ति की नब्ज़ पहचान गया कि उसमें सच्ची नम्रता नहीं है और बोला—"तुम जाओ और ढूँढ कर अपने से भी निम्नतर कोई चीज लाओ।"

व्यक्ति गया परन्तु बहुत ढूँढने पर भी अपने से निम्नतर वस्तु प्राप्त नहीं हुई।

अन्त में उसने अपनी विष्ठा पड़ी देखी और सोचा— लो, मिल गई, यह वस्तु अवश्य मेरे से निम्नतर है।

उसने अपना हाथ विष्ठा को उठाने के लिए फैलाया ही था कि विष्ठा में से आवाज आई—"ऐ पापी! खबरदार! मुझे नहीं छूना। मैं तो एक दिन सुन्दर स्वादिष्ट पकवान था, देखने वालों को सुहावना लगने वाला, खाने वालों को मीठा तथा भगवान के भोग के योग्य। परन्तु मेरा दुर्भाग्य मुझे तुम्हारे तक ले आया। और तुम्हारे स्पर्श से मेरी यह दुर्गति हुई कि सब कोई मुझसे घृणा करके अपनी नाक पर रूमाल रख लेते हैं। तुम्हारे एक स्पर्श से मेरा यह हाल हुआ। अब तुमने यदि मुझे दुबारा स्पर्श किया तो मेरी क्या गति होगी, इस पर जरा विचार करो। इसीलिये मैं कहता हूँ कि खबरदार मुझे नहीं छूना।

व्यक्ति ने जाकर अपनी सारी कथा उस साधु को सुनाई और कहा—"अब आपकी कृपा से सच्ची नम्रता सीख गया हूँ और आप आशीर्वाद दीजिये कि वह मेरे में सदा फलती फूलती रहे।"

६३—जैसा खाये अन्न वैसा बने मन

आहार शुद्धि पर हमारे धर्म ग्रन्थों ने, ऋषि महात्माओं ने बहुत जोर दिया है। विकारी भोजन जैसे मांस, मछली, अण्डे, अधिक प्याज लहसुन आदि खाकर हम कैसे निर्विकार मन के बन सकते हैं? ऐसा भोजन करने से तामसी दुष्ट-भाव मन में उत्पन्न होते हैं और हम न करने योग्य कर्म करने लगते हैं। इससे हमारा भला कैसे हो सकता है और जो मनुष्य अपना भला नहीं कर सकता वह दूसरे की भलाई क्या करेगा? शुद्ध सात्विक भोजन से आयु, बल, आरोग्य और सुख की वृद्धि होती है ऐसा गीता ने सत्रहवें अध्याय में हमें कहा है।

एक महात्मा गंगा किनारे रहते थे। ध्यान, पूजा, सेवा, प्रवचन आदि सत्कार्यों में रत रहते और शांति और आनन्द में इस प्रकार अपना समय बिताते थे। एक दिन एक गृहस्थ ने उन्हें भोजन पर निमन्त्रण दिया। ये गृहस्थ महात्मा के सत्संग में बराबर आते रहते थे, अतएव एक सत्संगी पुरुष के घर पर भोजन करने जाने में उन्हें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं हुई। परन्तु आश्चर्य की बात कि भोजन के बाद दूसरे ही दिन से उनके ध्यान-पूजा आदि में एकाग्रता भंग हो गई। इतनी लम्बी तपश्चर्या के पश्चात् आज पहली बार इस प्रकार का कटु अनुभव होने से उन्हें महान दुःख हुआ। उन्होंने बहुत प्रयत्न

किया कि पहले के ही समान उनका भजन में मन लगे, परन्तु मन अब उनके वश में नहीं रहा। होता यह था कि जब-जब वे ध्यान में बैठते तभी लाल साड़ी पहने एक सुन्दर परन्तु दुःखी दीखती हुई एक कन्या उनके ध्यान में आ बैठती। उस ओर से महात्मा कितना ही चित्त हटाने का प्रयत्न करते, परन्तु सब व्यर्थ। जब कई दिनों तक ऐसा सिलसिला चलता रहा तब अत्यन्त व्यथित हुए महात्मा अपने गुरु की शरण में पहुँचे। गुरु ने थोड़ी देर विचार करके पूछा—"तुमने इन दिनों कहीं अन्यत्र भोजन किया था?" महात्मा ने गृहस्थ के घर भोजन करने का वृतान्त बताया। गुरु ने कहा—"अपने विश्वसनीय भक्तों के द्वारा पता लगाओ कि वह भोजन दोषपूर्ण तो नहीं था।" गुरु की ऐसी आज्ञा पाकर महात्मा ने पता लगाया तो मालूम हुआ कि उस गृहस्थ ने अपनी छोटी सी सुन्दर बालिका का विवाह एक धनी वृद्ध से किया था और बदले में दस हजार रुपये लिये थे। उन्हीं दस हजार में से एक हजार का व्यय करके उसने दावत की थी जिसमें उन महात्मा को भी निमन्त्रण देकर भोजन कराया था। अब तो महात्मा को अपनी दशा का कारण समझ में आ गया।

प्रायश्चित-स्वरूप गुरु ने महात्मा से तीन दिन का व्रत केवल गंगाजल पिला कर कराया और साथ में निरन्तर गायत्री मंत्र का जाप। गुरु प्रसाद से महात्मा को तीन दिन के पश्चात् पुनः पहले की सी चित्त शांति और एकाग्रता प्राप्त हो गयी और वे सुख-पूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे।

ऐसा होता है भोजन का प्रभाव।

९४—पुरुषार्थ सही दिशा में हो

सृष्टि के आरम्भ में सब ओर अंधेरा ही अंधेरा व्याप्त था। लोग क्या करें? क्या अँधेरे को टोकरों में भर-भर कर फेंकें? ऐसा किया गया, परन्तु फल कुछ नहीं निकला। भगवान से प्रार्थना की जाये? ऐसा भी करके लोगों ने देख लिया, परन्तु अन्धकार पहले के ही समान चारों ओर अब भी फैला हुआ था। इतने में ही एक व्यक्ति अँधेरे में ही टटोलता हुआ दो पत्थर ढूंढ लाया। उसने उन दोनों पत्थरों को आपस में रगड़ा। लो, उनमें से चिनगारी निकलने लगी। चिनगारी से आग तैयार हो गई और सबके देखते ही देखते अँधेरा कहां का कहां गायब हो गया।

अँधेरा दूर करने में अपनी-अपनी बुद्धि अनुसार पुरुषार्थ तो बहुतों ने किया था, परन्तु केवल एक ही व्यक्ति का पुरुषार्थ सही दिशा में था। इससे उसने न केवल अपना अन्धकार दूर किया परन्तु साथ ही दूसरों का भी।

हमारा अज्ञान ही हमारा अन्धकार है। अधिकतर मनुष्य सदा अज्ञान में ही पड़े रहते हैं, क्योंकि उनका प्रयास सही दिशा में नहीं होता। जब किसी व्यक्ति का प्रयास ठीक दिशा में होता है तब वह केवल अपना ही भला नहीं करता वरन दूसरों का पथ भी आलोकित कर देता है।

९५—तिनका से तरी

एक धनिक हीरे जवाहरातों तथा कीमती वस्त्रों और अलंकारों से सुसज्जित होकर रास्ते से गुजर रहा था। यकायक

भीड़ में से एक व्यक्ति आगे बढ़ा और धनिक के निकट पहुँच कर उसे उसके अलंकारों के लिये बहुत-बहुत धन्यवाद दिया। उसकी इस क्रिया से धनिक को बड़ी हैरानी हुई और आश्चर्य से उसने उस व्यक्ति से पूछा—"भला तुम्हारे ऐसे कहने का क्या मतलब? मैंने तो तुम्हें कभी कोई हीरा या जवाहर दिया नहीं है कि तुम इस प्रकार मुझे धन्यवाद दो।"

"नहीं", वह व्यक्ति बोला, "आपका कहना सच है कि आपने मुझे कभी कोई हीरा या जवाहर नहीं दिया, लेकिन आपने मुझे हीरे-जवाहरातों को देखने का मौका तो दिया, बस इसीलिये मैं इतना खुश हूँ। आप खुद भी इन्हें देखकर खुश होने के सिवा और क्या कर सकते हैं? फिर भला आपमें और मुझ में क्या फर्क है? बल्कि मैं आपसे अधिक खुश हूँ, क्योंकि आपको इन हीरे-जवाहरातों की सुरक्षा की चिन्ता करनी पड़ती है और मैं इस चिन्ता से बिल्कुल बरी हूँ।"

धनिक उस व्यक्ति के कथन पर गम्भीरतापूर्वक सोचता-विचारता आगे बढ़ गया।

जिसे हम लौकिक दृष्टि से मूल्यवान समझते हैं उसका नैतिक दृष्टि से मूल्य ही क्या है? उल्टे ये मूल्यवान वस्तुएँ हमें आर्थिक दृष्टि से निम्न श्रेणी के लोगों से अलग-थलग करके संसार से लगाव और हमारे अन्दर मिथ्या अहंकार की भावना उत्पन्न करती हैं।

९६—*हमारा मूल्य कितना?*

एक अत्यन्त दरिद्री व्यक्ति एक महात्मा के पास गया और बोला—"महाराज, आप कृपा करिये जिससे मेरी दरिद्रता

दूर हो। दरिद्रता के कारण मैं बहुत दुःखी हूँ। समझ में नहीं आता कि क्या करूँ ? कोई मार्ग बताइये !"

महात्मा बोले—"अच्छा तो तुम सचमुच में दरिद्री हो, तुम्हारे पास कोई धन नहीं है ?"

व्यक्ति—"हाँ महाराज, मैं सचमुच दरिद्री हूँ, मेरे पास कोई साधन नहीं है।"

महात्मा—"अच्छा तो धन मिलने से तुम्हारी दरिद्रता दूर होगी ?"

व्यक्ति—"क्यों नहीं महाराज, धन मिलने से मेरी दरिद्रता अवश्य दूर होगी।"

महात्मा—"अच्छा तो अपने दोनों पैर कटवा दो और मेरे पास से इसी समय दस हज़ार रुपये ले लो।"

व्यक्ति—"यह बात तो महाराज मंजूर नहीं है।"

महात्मा—"अच्छा, शायद दस हजार थोड़े हैं, हाथ कटा कर बीस हजार रुपये ले लो।"

व्यक्ति—"नहीं महाराज, यह भी स्वीकार नहीं।"

महात्मा—"तो आंखें देकर तीस हजार ले लो।"

व्यक्ति—"नहीं महाराज, ऐसा भी नहीं करूंगा।"

महात्मा—"तो मस्तिष्क देकर चालीस हजार ले लो।"

व्यक्ति—"नहीं महाराज, ऐसा भी नहीं होने दूंगा।"

महात्मा—"अच्छा तो अब फिर किसी दिन आना।"

घर जाकर वह व्यक्ति महात्मा से हुई बातचीत पर चिन्तन करने लगा। अरे, क्या मेरे पास इतनी सम्पत्ति पड़ी है। क्या इतने धन का मैं मालिक हूँ? तब तो यह मेरी दरिद्रता कोरे मन का भ्रम ही है।

इस चिन्तन के कारण मनुष्य में आत्मविश्वास जाग्रत हुआ, पुरुषार्थ करना आरम्भ किया और सचमुच थोड़े ही समय में उसकी दरिद्रता कहीं की कहीं चली गयी।

हमारे अन्दर की शक्ति पहचानने के पश्चात् क्या कुछ सम्भव नहीं है?

६७—दुःख का भी स्वागत हो

परमात्मा हमें हर रोज ही अनेक प्रकार के सुख पहुँचाता है। उसकी सृष्टि में कभी उसके हाथों दुःख भी आए तो उसे हमें प्रसन्नतापूर्वक सहन कर लेना चाहिये, यह सोच कर कि परमात्मा के हाथों अन्याय हो ही नहीं सकता और उसके दिये दुःख में भी अवश्य हमारी कोई भलाई छिपी होगी।

हकीम लुकमान बचपन में गुलाम थे। एक दिन उसके स्वामी ने एक ककड़ी खानी चाही। मुँह में टुकड़ा लेते ही उन्हें मालूम पड़ा कि ककड़ी बहुत कड़वी है। स्वामी ने ककड़ी लुकमान की ओर बढ़ा दी और बोले—"ले, इस ककड़ी को तू खा ले!" लुकमान ने ककड़ी ले ली और बिना ज़रा भी चेहरे का भाव बिगाड़े वे उसे खुशी-खुशी खा गये।

लुकमान के स्वामी ने समझा था कि इतनी कड़वी ककड़ी कोई खा नहीं सकेगा। अवश्य लुकमान इसे फेंक

देगा । परन्तु जब लुकमान ने पूरी ककड़ी खुशी-खुशी खा ली तो स्वामी आश्चर्य में भर कर पूछने लगे—"वह ककड़ी तो बड़ी ही कड़वी थी, तुम इतनी बड़ी ककड़ी बिना मुँह बनाये कैसे खा गये ?"

लुकमान बोले—"मेरे उदार स्वामी, आप मुझे प्रतिदिन ही स्वादिष्ट पदार्थ प्रेमपूर्वक देते हैं । आपके द्वारा दिये गये अनेक प्रकार के सुख मैं भोगता हूँ । ऐसी स्थिति में यदि एक दिन आपके हाथ से मुझे कड़वी ककड़ी प्राप्त हो गई तो क्यों न मैं उसे आनन्दपूर्वक खाऊँ और इसमें भी आपका आभार मानूँ ।"

स्वामी समझदार, दयालु और धर्मात्मा थे । लुकमान के उत्तर से वे बड़े प्रसन्न हुए और तत्काल उन्हें गुलामी से मुक्त कर दिया ।

६८—*भगवान के कार्य पर अडिग विश्वास*

एक भगवद्भक्त एक वन के निकट अपनी पत्नी के साथ एक झोंपड़ी में रहते थे । वे निःसंतान थे । उन दोनों के सिवाय घर में तीन प्राणी और थे । एक बैल जो उनकी आजीविका का साधन था, क्योंकि उसकी पीठ पर लाद कर वह व्यक्ति सामान बेचने बाजार जाया करता था । दूसरा कुत्ता जो घर की चौकीदारी किया करता था । तीसरा था तोता जो दम्पत्ति को सवेरे की वेला में अपने मधुर स्वर में बोलकर उन्हें जगाया करता था, कहता था—"उठो, हरिभजन करो ।"

दैवयोग से एक रात्रि में पास ही वन में से एक सिंह निकल कर आया और भक्त की कुटिया के बाहर बंधे बैल को

मार कर खा गया। सवेरे जब इस घटना का पता चला तब वह भक्त बोला—"भगवान सब अच्छा ही करते हैं।" परन्तु उसकी पत्नी उदास हो गई। होनहार की बात कि उसी दिन पिंजरे का द्वार दम्पत्ति की असावधानी से खुला रह गया और तोता जो बाहर निकला तो कुत्ता लपक कर खा गया। भक्त सदा की भांति अभी भी बोला—"भगवान जो करते हैं अच्छे के लिए ही करते हैं।" इन शब्दों का बार-बार दोहराना सुनकर स्त्री को बहुत बुरा लगा, परन्तु वह किसी तरह अपने को दबाये रही। होनहार की बात कि उसी दिन शाम को कुत्ता भी बाहर गांव में मृत पाया गया। इस प्रकार एक दिन में कुटिया से तीन प्राणी विदा हो गये। भक्त की यह कठिन परीक्षा थी, परन्तु वह हारा नहीं, बोला—"भगवान जो करते हैं वे अच्छे के लिये ही करते हैं।" यह सुनकर इस बार भक्त की स्त्री रोष में भर गई और बोली—"रहने दो अपनी बात, जिस बैल से हमारी जीविका चलती थी उसे शेर खा गया। अब हमारे भूखे मरने की नौबत आ गई है और आप अभी भी फिजुल की बातें बोले जा रहे हैं। उधर कुत्ता हमारी कितनी सेवा करता था। और वह तोता कितना प्यारा था। घर उजाड़ हो गया और आपके भावै सब अच्छा ही हुआ।"

दूसरे दिन सवेरे उठकर भक्त और उसकी स्त्री ने जो देखा तो आश्चर्यचकित रह गये। गांव में लाशों के ढेर पड़े हैं। हुआ यह था कि पिछली रात में डाकू आये, गांव को पूरी तरह लूटा और वहां के रहने वालों को जान से मार डाला। भक्त की कुटिया में एकदम सन्नाटा छा रहा था अतः उधर की ओर डाकू बिना दृष्टिपात किये ही चल दिये।

"अब तुम्हें समझ में आया होगा," वह भक्त अपनी स्त्री से बोला—"कि जो भगवान करते हैं वे अच्छे के लिये ही करते हैं। आज हम इसलिये जीवित हैं, क्योंकि ईश्वर ने हमारे ऊपर अपार दया करके हमारे घर में उन तीन प्राणियों को पहले से ही उठा लिया। बैल तो बाहर ही बंधता था, डाकुओं की दृष्टि उस पर जाती, गांव का कोलाहल सुनकर अवश्य हमारा कुत्ता भौंकता और जबरन डाकुओं को इधर बुला लेता। उधर तोता बोलने लगता और वह भी हमारी मुसीबत का कारण बनता। इसीलिये मैं कहा करता हूं कि जो भगवान करते हैं, वे अच्छे के लिये ही करते हैं।"

स्त्री आज निरुत्तर और चुप थी।

९९—*भगवान तक कितना पहुँचा, मुख्य बात*

एक धनी व्यक्ति था। पुण्यमयी सरिता में उसकी बड़ी श्रद्धा थी। गंगा के किनारे ही उसका घर था। गंगा में स्नान और उसका पूजन यह उसका नित्य नियम था। एक बार किसी काम की सफलता के लिए उसने गंगा से मानता मानी—"हे गंगा माता! यदि तू मेरा काम सफल कर दे तो तुझे एक हजार बढ़िया आम भेंट करूंगा।" दैवयोग से धनी का काम बन गया और फिर दूसरे ही दिन एक हजार बढ़िया रसीले आम टोकरों में भर कर गंगा के तट पर पहुँचा। एक-एक दो-दो करके थोड़ी देर में उसने समस्त एक हजार आम गंगाजी में बहा दिये। और सब आम तो बह गये, एक आम को, किनारे के कुछ नजदीक बहने से, एक अत्यन्त दरिद्र भिखारी ने दौड़ कर लपक लिया।

रात्रि में गंगामाता ने उस धनी व्यक्ति को स्वप्न में कहा—"तेरी मानता पूरी नहीं हुई, तूने मानता तो मानी थी एक हजार ग्रामों की परन्तु मुझे तो एक ही ग्राम मिला।"

"यह क्या कह रही हो मां, मैंने गिनकर पूरे एक हज़ार ग्राम आपको भेंट किये हैं।" उस व्यक्ति ने कहा।

"नहीं, मुझे तो एक ही ग्राम मिला, वह जो दरिद्र भिखारी के पेट में गया।"

धनवान की आँख खुली। अब उसे समझ में आया कि भगवान केवल वही भेंट ग्रहण करते हैं जो उनके गरीब, भिखारी, भूखे बच्चों के पेट में पहुँचती है।

पूज्य बापू (महात्मा गांधी) हवन के विरुद्ध नहीं थे, पर वे कहा करते थे कि इस गरीब देश में जहाँ लोगों को सूखी रोटी भर पेट खाने को नहीं मिलती वहां मनों घी को अग्नि में होमने का क्या अर्थ है? दूसरी बात सोचने से पहले हमें भूखों के भर पेट भोजन की व्यवस्था करनी पड़ेगी। इसी प्रकार गंगा पर सच्चा चढ़ावा वह है जो भूखे के पेट में जाये।

१००—*समता का पाठ*

सदा बदलने वाले संसार में सुख-दुःख ग्राते रहते हैं ग्रौर जाते भी रहते हैं। यहाँ कुछ भी स्थायी नहीं। न सदा गर्मी रहती है न सदा सर्दी। काल के प्रवाह में ये सब परिवर्तित हो रहे हैं। गीता में श्रीकृष्ण ग्रर्जुन से कहते हैं—"हानि-लाभ, सुख-दुःख, मान-ग्रपमान, जय-पराजय, गर्मी-सर्दी इन सबमें तू सदा एक

एक समान रह, क्योंकि ये सभी आने जाने वाले हैं, इनमें से स्थायी कोई भी नहीं।"

एक धनी व्यापारी था, सुख समृद्धि में दिन बीत रहे थे, घर बार ऐश्वर्य नौकर चाकर किसी बात की कमी नहीं थी। दैवयोग की बात कि व्यापारी को व्यापार में जबरदस्त घाटा आया। इस कारण से उसकी आर्थिक दशा बहुत बिगड़ गई। वह ऋण में डूब गया। अब तो चारों ओर उसे निराशा और अन्धकार ही दीखने लगा। जैसा कि होता आया है—"आराम के साथी क्या-क्या, जब वक्त पड़ा तब कोई नहीं।" इस प्रकार वित्त और मित्र दोनों से वंचित होकर वह आत्महत्या के विचार से निकट के जगल में चला गया। एक पेड़ पर रस्सा बांध कर वह लटकने ही वाला था कि यकायक एक वृद्ध ने उसे देख लिया। वृद्ध बोला—"अरे भाई! यह क्या कर रहे हो?" व्यापारी ने रोते-रोते अपना दुखड़ा उस वृद्ध को कह सुनाया। उसकी सारी कथा सुनकर वह वृद्ध बोला—"रे भाई! यह तो बताओ, तुम अभी ही दुःखी हो या सदा ही दुःखी थे? वह व्यापारी बोला—"नहीं महाराज, सो बात तो नहीं। अभी तक तो सदा ही सुखी था। मेरे पास किसी बात की कमी नहीं थी हां, एक बार मैं दुःखी हुआ था जब मुझे कई दिनों तक ज्वर चढ़ा रहा और उपचार करने पर भी किसी प्रकार उतरता नहीं था। आखिर वह भी उतर गया और मैं पुनः सुखी हो गया?"

वह वृद्ध बोला—"अच्छा तो तुम प्रायः सदा सुखी थे और अब दुःखी हो, यही बात है न? अब थोड़ा विचार करो। जैसे तुम्हारे सुख था और वह चला गया और उसकी जगह दुःख आ गया, तो क्या यह बात सम्भव नहीं कि तुम्हारा यह

दुःख भी चला जाये और पुनः सुख आ जाये। ज्वर से पीड़ित होकर तुम दुःखी थे और वह दुःख दूर हो गया। क्या तुम्हारा वर्तमान दुःख सदा स्थायी बन कर आया है ? जाओ, अपने दुःख को भूलो और पुनः उद्योग करो। न दुःख में निराश होना और न सुख में फूला समाना।"

व्यापारी को वृद्ध की बात लग गई। उसने साहस बटोर कर फिर उद्यम करना आरम्भ किया और थोड़े ही समय में ईश्वर कृपा से वह पहले से भी अधिक सुखी हो गया।

१०१—बस मतलब पूरा हुआ

कहावत है—

दुःख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे, तो दुःख काहे को होय॥

जब विपत्ति आती है तब धीर भी घबरा जाता है। घोर विपत्ति में बड़े से बड़े नास्तिक के मुँह से भी हे राम ! हे भगवान ! अनायास निकल आता है। वास्तविक भक्त सुख में फूलेगा नहीं। सांसारिक प्राप्ति को क्षणिक व नाशवान समझकर वह मन की समता को नहीं खोयेगा। परमात्मा को ही एकमात्र अविनाशी जानकर वह उनका भजन स्मरण बराबर करता रहेगा, बल्कि सुख की प्राप्ति के समय को और भी अधिक अनुकूल अवसर जानकर वह साधन में विशेष उत्साह से जुट जायेगा। सुख में किये स्मरण से ही मनुष्य का ईश्वर में विश्वास प्रकट होता है। ऐसे मनुष्य को दुःख के अवसर पर पूर्वाभ्यास द्वारा संचित श्रद्धा, भक्ति और विश्वास उसे दुःख की

घाटी से सहज ही पार करा देते हैं। इसीलिये कहा है कि जैसे-तैसे जब कभी भी हो भगवान का स्मरण नहीं छोड़ना चाहिये। परन्तु दुर्भाग्य से हमारे में से अनेक व्यक्ति ऐसे हैं जो सोचते हैं हम भगवान को भी धोखा दे सकते हैं।

एक अपराधी को फांसी की सजा सुनाई गई। उसे जेल भेज दिया गया। जेल में वह सदा पूजा-पाठ में लगा रहता। जब भी कोई जेल अधिकारी अथवा कर्मचारी उसके पास से निकलता तो उसे पूजा-पाठ जप-ध्यान करते ही पाता। यहां तक कि उससे कुछ पूछा जाता तो वह बोलता भी नहीं, केवल इशारों से जवाब दे दिया करता। केवल दिन में ही नहीं, रात में भी उसकी पूजा-पाठ में कोई कमी नहीं आती थी। सचमुच लोगों को उसका ऐसा भक्तिभाव देखकर आश्चर्य ही होता था। वरना अधिकतर फांसी की सजा पाये लोग तो सदा चिन्तारत व उदास ही देखे जाते है।

एक दिन सदा की भांति जब जेलर उसकी कोठरी में गया तो क्या देखता है कि वह व्यक्ति आराम से पैर पसार कर सो रहा है। उस समय तो जेलर ने उसे जगाया नहीं। बाद में उस व्यक्ति से मिलने पर उससे पूछा—"क्यों भाई, क्या बात है कि आज तुम सो रहे थे, तबीयत तो ठीक है?" सजा प्राप्त व्यक्ति ने इशारे से जेलर को अपने पास बुलाया और बोला—"जेलर साहब, तबीयत मेरी बिल्कुल ठीक है। बात यह है कि ऊपर से पत्र आया है कि मेरी फांसी की सजा बदल कर, मात्र सात वर्ष की कैद कर दी गई है। सोचता हूं, अब और भगवान को कष्ट क्यों दूं?"

१०२—विचित्र आशीर्वाद

एक बार गुरु नानक घूमते-घूमते एक गाँव में पहुँचे। उस गाँव के लोग बड़े सुशील थे। आपस में हिलमिल कर रहते और एक-दूसरे से प्रेम करते थे। दूसरे के दुःख को अपना ही दुःख मानते और विपत्ति में एक-दूसरे की पूरी सहायता करते थे। किसी को किसी वस्तु की आवश्यकता हुई और दूसरे के पास वह वस्तु हुई तो वह उदारतापूर्वक उसे दे देता था। जब गुरु नानक उस गाँव में पहुँचे तो वहां के लोगों ने बड़े प्रेम और जोश के साथ उनका स्वागत किया। गुरु नानक भी ऐसे अच्छे लोगों से मिलकर बड़े प्रसन्न हुए। वे कुछ दिन उनके बीच वहाँ ठहरे। जब जाने लगे तो एकत्रित लोगों को उन्होंने आशीर्वाद दिया—"उजड़ जाओ !"

आगे चलकर गुरु नानक एक दूसरे गाँव में पहुँचे। उस गाँव के लोग बड़े झगड़ालू और दुष्ट प्रकृति के थे। वे आपस में कभी प्रेम से तो रहते ही नहीं थे, सदा एक-दूसरे के विरुद्ध षड़यंत्र रचा करते थे। कोई भी अपने सामने दूसरे को नहीं गिनता था। एक दूसरे से ईर्षा करते थे। और उनमें आपस में सहयोग, सद्भावना का नितान्त अभाव था। गुरु नानक के इस गाँव में पहुँचने पर किसी ने आगे बढ़कर उनका स्वागत नहीं किया। उल्टे वे दुर्वाक्य बोलने लगे। गुरु नानक इस ग्राम में जैसे-तैसे एक-दो दिन रहे। जब गाँव से चलने लगे तो वहाँ के निवासियों को उन्होंने आशीर्वाद रूप में कहा—'आबाद रहो !'

गुरु नानक के साथियों में से एक से नहीं रहा गया और उसने उत्सुकतापूर्वक गुरु नानक से पूछा—"महाराज, क्षमा करें।

आपके आशीर्वादों का रहस्य हमारी कुछ समझ में नहीं बैठा। सज्जन लोगों को तो आपने आशीर्वाद दिया "उजड़ जाओ" और दुर्जन लोगों को आपने आशीर्वाद दिया "आबाद रहो"। यह तो बड़ी ही विचित्र बात है।"

गुरु नानक बोले—"भाई, बात सरल है। सज्जन लोग जहाँ भी जायेंगे, सज्जनता का प्रसार करेंगे, अपने इर्द-गिर्द उत्तम वातावरण बनायेंगे। इस प्रकार उनके द्वारा सद्भावना का प्रचार और उसमें वृद्धि होगी। इसी से मैंने कहा 'उजड़ जाओ'। दुष्ट जहाँ भी कहीं जायेंगे अपनी दुष्टता फैलायेंगे। इस प्रकार दुष्टता का प्रसार एवं उसमें वृद्धि होगी। इसी से मैंने कहा—"आबाद रहो।" अर्थात् एक ही जगह बने रहो, फैलो मत। दुष्टता अपनी ही जगह रहे, आगे न बढ़े इसमें सबकी भलाई है।

१०३—ईश्वर का वास्तविक स्थान

एक मन्दिर के बाहर एक स्त्री खड़ी रो रही थी। मंदिर में आने-जाने वालों का तांता लग रहा था। मंदिर के अन्दर आरती हो रही थी। घण्टे और नगाड़े मधुर ध्वनि से बज रहे थे। भक्त लोग भगवान के दर्शनों का आनन्द ले रहे थे। सब अपनी-अपनी धुन में मस्त थे। उधर वह औरत रोये जा रही थी। उस पर किसी की नजर नहीं थी। उन घण्टे और नगाड़े की ध्वनि में उसके रोने की आवाज किसे सुनाई पड़ सकती थी और फुर्सत भी किसे थी जो सुने। दर्शन के आनन्द के समय ऐसा अशुभ रोना क्या अच्छा लगता है?

आखिर एक व्यक्ति भीड़ में से निकला और उस स्त्री के पास खड़ा हो गया। वह व्यक्ति देखने में बड़ा ही सुन्दर और

तेजस्वी लगता था। उसकी भव्यता और सौम्यता से जैसे वह स्थान प्रकाशित हो उठा। उसका वेश सीधा-सादा था, परन्तु उसके चेहरे पर एक गहरे विषाद की छाया इतनी स्पष्ट झलकती थी कि हर कोई उसे देख सकता था। ऐसा लगता था मानो संसार के दुःख से दुःखी होकर दुःखी को सान्त्वना देने वह व्यक्ति किसी अज्ञात प्रदेश से आया हो। उस स्त्री का रोना वह थोड़ी देर तक सुनता रहा फिर बड़े ही मधुर शब्दों से उस स्त्री को सम्बोधित कर बोला—"हे माता, तुम्हारे रोने का क्या कारण है ?"

स्त्री ने कहा—"मेरे रोने का कारण और कुछ नहीं, बस मैं मन्दिर के अन्दर दर्शनों को एक बार जाना चाहती हूँ और ये लोग मुझे जाने नहीं देते, क्योंकि मैं निम्न जाति की हूँ।"

"यह तो रोने का इतना बड़ा कारण नहीं है। देखो, मैं भी तो हूँ जिसका मंदिर में प्रवेश वर्जित है। तुम अकेली नहीं जिसे मन्दिर में जाने से इन्होंने रोका हो।" वह व्यक्ति बोला।

स्त्री उस व्यक्ति की बात सुनकर आश्चर्यचकित हो गई। यह पुरुष तो मंदिर में जाने वाले किसी भी व्यक्ति की अपेक्षा हर प्रकार से अधिक योग्यता वाला लगता है, फिर भला उसे क्यों नहीं अन्दर जाने दिया जाता। स्त्री उस व्यक्ति की दशा के आगे अपनी दशा को तो बिल्कुल भूल ही गई।

"परन्तु तुम हो कौन ?" वह स्त्री पूछ बैठी।

"मैं वह हूँ जिसे लोग समझ रहे हैं कि हमने इसे मंदिर में कैदी बनाकर रख लिया है और जिसकी घण्टे, नगाड़े बजा कर और आरती उतार कर पूजा की जा रही है।" वह व्यक्ति बोला।